All Subject to Patiala Jurisdiction.
साप्ताहिक कृषि समाचार-पत्र
मूल्य : 6/- रुपए

खेती संदेश

WEEKLY KHETI SANDESH
Postage Registered No. PB/PTA/0339/2025-2027
E-mail : khetisandesh2025@gmail.com
Chief Editor : Parminder Kaur • RNI - PBBIL/25/A0210 • Issue Dt. 15-06-2026 • Vol.2 No.24 • H.O. : # 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.) • M. 90410-14575 • Page 12

केंचुआ खाद
सतत कृषि एवं मृदा स्वास्थ्य का आधार

नेहा चौहान, पंकज सूद, एल.के. शर्मा,
कृषि विज्ञान केन्द्र, मंडी, सुंदरनगर

शबनम, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, डॉ. वाई.एस. परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, गुडेहरि (गोहर), मंडी

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां कृषि न केवल आजीविका का प्रमुख साधन है, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था की आधारशिला भी है। बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता के कारण पिछले कुछ दशकों में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्याधिक उपयोग किया गया है। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि तो हुई, लेकिन इसके साथ-साथ मृदा की उर्वरता, जैविक कार्बन की मात्रा तथा लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में निरंतर गिरावट दर्ज की गई है। परिणामस्वरूप मिट्टी की उत्पादकता प्रभावित हुई है और कृषि लागत भी बढ़ी है।

ऐसी परिस्थितियों में जैविक खादों का महत्व तेज़ी से बढ़ा है। जैविक खादों में केंचुआ खाद एक अत्यंत प्रभावी, पोषक तत्वों से भरपूर तथा पर्यावरण अनुकूल विकल्प है। केंचुआ खाद न केवल पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है, बल्कि मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में भी सुधार लाती है। यही कारण है कि जैविक खेती, प्राकृतिक खेती और टिकाऊ कृषि प्रणालियों में केंचुआ खाद का उपयोग निरंतर बढ़ रहा है।

केंचुआ खाद : केंचुआ खाद वह उच्च गुणवत्ता वाली जैविक खाद है, जो केंचुओं द्वारा विभिन्न जैविक पदार्थों जैसे गोबर, फसल अवशेष, सब्ज़ियों एवं फलों के अपशिष्ट, सूखी पत्तियों तथा अन्य जैव-विघटनीय पदार्थों को विघटित करके तैयार की जाती है। केंचुए जैविक पदार्थों को खाकर उन्हें अपने पाचन तंत्र से गुजारते हैं और उनके द्वारा उत्सर्जित पदार्थ अत्यंत पौष्टिक पदार्थ अत्यंत पौष्टिक एवं सूक्ष्मजीवों से भरपूर खाद के रूप में प्राप्त होते हैं।

यह खाद सामान्य कम्पोस्ट की तुलना में अधिक गुणवत्तायुक्त मानी जाती है, क्योंकि इसमें पौधों के लिए उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा सूक्ष्म पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक लाभकारी सूक्ष्मजीव, एंजाइम तथा पौध वृद्धि नियामक भी उपस्थित होते हैं।

कृषि में केंचुआ खाद का महत्व : वर्तमान समय में मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखना कृषि की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। लगातार रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी में जैविक पदार्थों की मात्रा कम होती जा रही है। केंचुआ खाद इस समस्या का प्रभावी समाधान प्रदान करती है। यह मिट्टी में जैविक कार्बन बढ़ाने के साथ-साथ उसकी संरचना, वातन क्षमता एवं जल धारण क्षमता में सुधार करती है। केंचुआ खाद का नियमित प्रयोग मिट्टी को भुरभुरी बनाता है, जिससे जड़ों का विकास बेहतर होता है। इसके अतिरिक्त यह पोषक तत्वों को धीरे-धीरे उपलब्ध करवाती है, जिससे पौधों को लंबे समय तक संतुलित पोषण मिलता रहता है।

केंचुआ खाद निर्माण हेतु उपयोगी सामग्री : केंचुआ खाद निर्माण के लिए अनेक प्रकार के जैविक पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है। इनमें प्रमुख है :-

* गोबर (विशेषकर गाय एवं भैंस का गोबर)
* फसल अवशेष
* फल एवं सब्ज़ी अपशिष्ट
* सूखी पत्तियां
* कृषि एवं बागवानी अपशिष्ट
* घरेलू जैविक कचरा
* गन्ने की खोई, चाय की पत्ती आदि
* बीज रहित खरपतवार बायोमास

खेतों से निकाले गए खरपतवार भी केंचुआ खाद निर्माण के लिए उपयोगी कच्चा माल सिद्ध हो सकते हैं। यदि इन्हें फूल एवं बीज बनने से पहले एकत्रित कर लिया जाए, तो इन्हें गोबर एवं अन्य जैविक पदार्थों के साथ मिला कर उत्तम गुणवत्ता की खाद तैयार की जा सकती है। इससे खेतों में खरपतवारों की समस्या कम होने के साथ-साथ जैविक अपशिष्ट का पुनर्चक्रण भी होता है।

केंचुआ खाद निर्माण के लिए उपयुक्त केंचुए : सभी प्रकार के केंचुए खाद निर्माण के लिए समान रूप से उपयुक्त नहीं होते। केंचुआ खाद उत्पादन के लिए निम्न प्रजातियों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है :-

* आइसेनिया फेटिडा
* यूड्रिलस यूजीनिया
* पेरियोनिक्स एक्सकैवेटस

ये केंचुए जैविक पदार्थों को तेज़ी से विघटित करते है तथा कम समय में अधिक मात्रा में खाद तैयार करने में सक्षम होते है।

केंचुए खाद निर्माण की विधि : केंचुआ खाद का उत्पादन सीमेंटेड टैंक, ईंटों से बने बेड अथवा तैयार वर्मी-बेड में किया जा सकता है। सबसे पहले एक छायादार स्थान का चयन किया जाता है, जहां पानी की सुविधा उपलब्ध हो।

टैंक या बेड के तल में 1-2 इंच मोटी रेत या मिट्टी की परत बिछाई जाती है। इसके ऊपर आंशिक रूप से सड़ा हुआ गोबर तथा अन्य जैविक पदार्थों को परत-दर-परत डाला जाता है। सामान्यत: जैविक पदार्थ एवं गोबर का अनुपात 60:40 रखा जाता है। जब बेड की ऊंचाई लगभग 1.5 से 2 फीट हो जाए, तब उसमें केंचुओं को छोड़ा जाता है।

बेड को सूखे भूसे, बोरियों अथवा हेसियन कपड़े से ढक दिया जाता है, ताकि नमी बनी रहे और केंचुए सुरक्षित रहें। खाद निर्माण की पूरी प्रक्रिया के दौरान 70-80 प्रतिशत नमी बनाए रखना अत्यंत आवश्यक होता है। सामान्यत: 60 से 90 दिनों में खाद तैयार हो जाती है।

केंचुआ खाद निर्माण में सावधानियां :

केंचुआ खाद तैयार करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

* ताज़ा गोबर सीधे प्रयोग न करें।
* बेड में पर्याप्त नमी बनाए रखें।
* जलभराव की स्थिति न बनने दें।
* बेड को सीधी धूप और वर्षा से बचाएं।
* कीटनाशकों एवं रासायनिक अवशेषों वाले पदार्थों का प्रयोग न करें।
* चींटी, दीमक एवं अन्य हानिकारक जीवों से सुरक्षा सुनिश्चित करें।
* बीज युक्त खरपतवारों का उपयोग न करें।

केंचुआ खाद के लाभ : केंचुआ खाद को जैविक खेती की रीढ़ माना जाता है, क्योंकि इसके अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ है।

1. मृदा की संरचना में सुधार : केंचुआ खाद मिट्टी को भुरभुरी बनाती है, जिससे जड़ों का विकास बेहतर होता है और पौधे अधिक पोषक तत्व ग्रहण कर पाते हैं।

2. जल धारण क्षमता में वृद्धि : केंचुआ खाद मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती है, जिससे पानी को रोक कर रखने की क्षमता बढ़ जाती है।

3. पोषक तत्वों की उपलब्धता : यह खाद नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों का उत्कृष्ट स्त्रोत है। इसके पोषक तत्व पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

4. लाभकारी सूक्ष्मजीवों की वृद्धि : केंचुआ खाद में अनेक लाभकारी जीवाणु एवं कवक पाए जाते हैं, जो पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में सहायक होते है।

5. पौध वृद्धि को प्रोत्साहन : इसमें उपस्थित वृद्धि नियामक जैसे ऑक्सिन एवं जिबरेलिन पौधों की वृद्धि एवं विकास को बढ़ावा देते हैं।

6. रोग एवं कीट प्रबंधन में सहायता : केंचुआ खाद के प्रयोग से पौधों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है तथा कई मृदा जनित रोगों की तीव्रता कम हो सकती है।

7. रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता में कमी : नियमित उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है, जिससे कृषि लागत घटती है और पर्यावरण संरक्षण में सहायता मिलती है।

केंचुआ खाद की उपयोग मात्रा : फसल एवं मिट्टी की स्थिति के अनुसार केंचुआ खाद की मात्रा निर्धारित की जाती है।

* **अनाज फसलों के लिए :** 2.5-3.0 टन प्रति हैक्टेयर
* **सब्ज़ी फसलों के लिए :** 4-5 टन प्रति हैक्टेयर
* **फलदार पौधों के लिए :** 5-20 किलोग्राम प्रति पौधा
* **नर्सरी एवं पॉलीहाउस फसलों में :** आवश्यकता अनुसार मिट्टी मिश्रण में 20-25 प्रतिशत तक

पर्यावरण एवं सतत कृषि में भूमिका : केंचुआ खाद जैविक अपशिष्ट प्रबंधन का एक उत्कृष्ट माध्यम है। इसके माध्यम से कृषि एवं घरेलू जैविक कचरे का पुनर्चक्रण होता है और पर्यावरण प्रदूषण कम होता है। यह मृदा स्वास्थ्य को सुधारने, जैव विविधता को बढ़ावा देने तथा टिकाऊ कृषि प्रणाली विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जलवायु परिवर्तन और मृदा क्षरण जैसी चुनौतियों के दौर में केंचुआ खाद का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

निष्कर्ष : केंचुआ खाद एक सरल, कम लागत वाली तथा पर्यावरण-अनुकूल तकनीक है, जो मृदा स्वास्थ्य सुधारने, फसल उत्पादन बढ़ाने तथा कृषि को अधिक टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जैविक पदार्थों के पुनर्चक्रण के माध्यम से तैयार यह खाद पौधों को संतुलित पोषण प्रदान करती है और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करती है। वर्तमान समय में जब टिकाऊ कृषि एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता बढ़ रही है, तब केंचुआ खाद का व्यापक प्रचार-प्रसार एवं उपयोग किसानों की आय बढ़ाने तथा स्वस्थ कृषि प्रणाली विकसित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकता है।

कपास की बीमारियों से कैसे सचेत रहे किसान

कपास में लगने वाले रोग मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। पत्तों पर लगने वाले रोग एवं जड़ पर लगने वाले रोग।

पत्तों पर लगने वाले रोगों में पत्ता मरोड़ रोग मुख्य है। इसके पश्चात् कोणदार धब्बों का जीवाणु रोग भी महत्वपूर्ण है। जड़ में लगने वाले रोगों में जड़ गलन तथा झलुसा रोग मुख्य है। इसके अतिरिक्त टिण्डा गलन जोकि फफूंद जीवाणु तथा कीड़ों द्वारा उत्पन्न होता है, अधिक बरसात में एक महत्वपूर्ण समस्या का रूप धारण कर लेता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि इन रोगों की सही पहचान कर उचित रोकथाम की जा सके। कपास पर लगने वाले मुख्य रोग व उनकी रोकथाम इस प्रकार है।

पत्ता मरोड़ रोग

यह कपास का सबसे मुख्य रोग है। सबसे पहले ऊपर की कोमल पत्तियों पर इसका असर दिखाई पड़ता है, पत्तियां ऊपर

की तरफ मुड़ कप जैसी आकृति की हो जाती है और कहीं-कहीं पर पत्तियों की निचली तरफ नसों पर पत्ती की आकार की बढ़वार भी दिखाई देती है। ऐसे पौधे छोटे रह जाते हैं, इन पर फूल, कली व टिण्डे नहीं लगते, इनकी बढ़वार एकदम रुक जाती है और इसका उपज पर बहुत विपरीत असर पड़ता है। यह रोग एक जैमिनी विषाणु द्वारा होता है। सफेद मक्खी इस रोग को लाने फैलाने में सहायक है। बीज, ज़मीन या छुआछूत द्वारा यह रोग नहीं फैलता है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में आ सकता है। इस रोग से 80-90 प्रतिशत तक फसल में नुकसान हो सकता है। यदि यह रोग फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आ जाए, तो ज्यादा नुकसान होता है और फसल की पिछेती अवस्था में आये, तो पैदावार पर लगभग कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब यह रोग जहां ज्यादा हो, वहां पर देसी कपास बोई जाए, क्योंकि देसी कपास में यह रोग नहीं लगता। सफेद मक्खी का पूर्ण रूप से नियंत्रण रखें। कई प्रकार के खरपतवार भी इस रोग को फैलाने में सहायक है। इसलिए खेतों को, आस-पास के क्षेत्रों को तथा नालियों आदि को बिल्कुल साफ रखना बहुत ज़रुरी है। भिण्डी पर भी यह रोग पाया जाता है। इसलिए जहां पर यह रोग लगता हो, वहां पर भिण्डी की काश्त ना करें। इस रोग की रोकथाम के लिए कोई फफूंदी-नाशक उपयोगी नहीं है। इसके बचाव के लिए कुछ सावधानियां बरतनी ज़रुरी हैं :

* फसल की अगेती बुवाई।

* रोग रोधी किस्मों का प्रयोग।

* सफेद मक्खी को नियंत्रण में रखना।

* खेत के आस-पास खरपतवार को नहीं पनपने देना।

जीवाणु अंगमारी या कोणदार धब्बों का रोग

यह रोग पौधे सभी भागों पर अपने लक्षण दिखाता है। इसके मुख्य लक्षण हैं - टहनियों पर धब्बे, पत्तों पर कोनेदार धब्बे व

शेष पृष्ठ 8 पर

खेती संदेश

KHETI SANDESH

मुख्य कार्यालय :
9—ए, अजीत नगर,
पटियाला—147001
(पंजाब)
मो. 98151—04575

कार्पोरेट कार्यालय :
के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड,
नजदीक शेरे पंजाब मार्केट,
पटियाला—147001
(पंजाब)
मो. 90410—14575

वर्ष : 02 अंक : 24
तिथि : 15-06-2026

सम्पादक

परमिंदर कौर

सम्पादकीय बोर्ड

डॉ. डी.डी. नारंग
डॉ. जे.एस. डाल
डॉ. आर.एम. फुलझेले

Editor : **PARMINDER KAUR**
Printer, Publisher and Owner of Weekly **'KHETI SANDESH'** Printed at **Drishti Printers,** Dasmesh Market, Near Sher-e-Punjab Market, Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) and published from **Kheti Sandesh**, House No. 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.). E-mail : khetisandesh2025@gmail.com Mob. 90410-14575, RNI No.**PBBIL/25/A0210**

दुधारू पशुओं में थनैला रोग की घटनाएं और उसका प्रबंधन

दूध मानव में रोगजनक सूक्ष्मजीवों के संचरण का एक सामान्य स्त्रोत है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर सकता है। दूध में संक्रमण का प्रमुख कारण थनैला रोग, थनों में सूजन का परिणाम है, जो गाय-भैंसों में काफी प्रचलित रोग माना जाता है। दुग्ध उत्पादन कम होने के कारण किसानों को गंभीर आर्थिक नुकसान हुआ है और पशु के इलाज में पशु चिकित्सा लागत भी शामिल है।

थनैला के दो रूप : थनैला के दो रूप हैं जैसे क्लिनिकल थनैला और सब-क्लिनिकल थनैला।

क्लिनिकल थनैला की पहचान भड़काऊ लक्षणों से होती है, जैसे स्तन ग्रंथि की सूजन और एडिमा और जानवर का तेज बुखार। दूध उत्पादन में अचानक कमी आ जाती है और दूध में भारी असामान्यताएं दिखाई देने लगती हैं।

दूसरी ओर, उप-नैदानिक/सब-क्लिनिकल / थनैला के मामले में या तो थन में या दूध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं दिखाई देते हैं, लेकिन दूध का उत्पादन कम हो जाता है और दूध में सोमैटिक सेल काउंट (SCC) बढ़ जाता है। इसलिए, उप-नैदानिक/स्तनदाह के निदान की कमी डेयरी उद्योग के लिए एक गंभीर चुनौती है।

बैक्टीरिया, कवक, शैवाल और वायरस सहित रोगाणुओं की एक विस्तृत श्रृंखला को विश्व स्तर पर गोजातीय थनैला के प्रेरक एजेंटों के रूप में प्रलेखित किया गया है। थनैला के प्राथमिक कारण बैक्टीरिया हैं जिनमें स्टैफिलोकोकस ऑरियस, स्ट्रेप्टोकोकस एग्लैक्टिया, माइको प्लाज्मा एसपीपी जैसे संक्रामक बैक्टीरिया दोनों शामिल हैं और कोरिनेबैक्टीरियम बोविस और पर्यावरणीय बैक्टीरिया जैसे ई. कोलाई, क्लेबसिएला एसपीपी, स्ट्रैप्टोकोकस डिस्गैलेक्टिया और स्ट्रेप्टोकोकस यूबेरिस। थनैला में दूध में बैक्टीरिया और उनके विषाक्त पदार्थों के बहाव से जुड़ी एक गंभीर जूनोटिक क्षमता होती है।

थनैला पैदा करने वाले कारक

* थनैला की घटनाएं कई जोखिम कारकों से जुड़ी हुई हैं और इसलिए, थनैला को मेजबान के अनुवांशिक घटकों, संक्रामक एजेंटों और पर्यावरणीय कारकों के बीच बातचीत से उत्पन्न बहुक्रियाशील थ्रैशहोल्ड विशेषता के रूप में जाना जाता है।

* झुंड स्तर के जोखिम कारक झुंड के आकार, खेत प्रबंधन, आवास प्रणाली, उपयोग की जाने वाली बिस्तर सामग्री, उदर स्वच्छता के साथ-साथ खलिहान की स्वच्छता में अंतर के कारण उत्पन्न होते हैं।

* गाय के विशिष्ट जोखिम कारक गायों में थनैला की घटनाओं में अंतर से संबंधित हैं। प्रजातियां, नस्ल, दुग्ध उत्पादन क्षमता, दुद्ध निकालना का चरण, चूची घाव और पिछले थनैला इतिहास प्रसिद्ध गाय कारक हैं। ब्याने का मौसम भी गोजातीय पशुओं में मैस्टाइटिस की घटनाओं को प्रभावित करता है। पिछले अध्ययनों में छत्तीसगढ़ में भैंसों के बीच लगभग 68 प्रतिशत उप-नैदानिक/ थनैला घटनाओं को दर्शाया गया है।

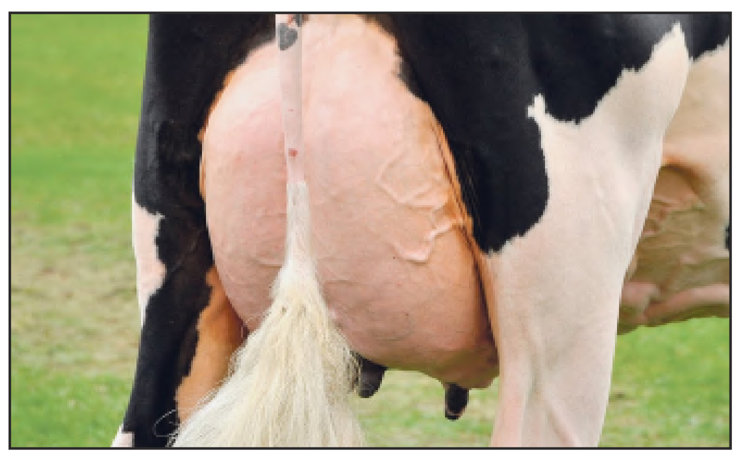

किसानों द्वारा स्तनदाह की नियमित रोकथाम और नियंत्रण प्रथाओं के कार्यान्वयन में कमी के कारण गोजातीय पशुओं में स्तनदाह के उच्च प्रसार के लिए जोखिम कारकों की प्रबलता हो सकती है।

थनैला की रोकथाम और उपचार के लिए डेयरी किसान एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग करते हैं। इसका परिणाम दूध में एंटीबायोटिक अवशेषों की उपस्थिति में होता है। ये एंटीबायोटिक अवशेष तब जानवरों में रोगाणुरोधी-प्रतिरोधी (ए.एम.आर.) बैक्टीरिया विकसित करते हैं। ये ए.एम.आर. बैक्टीरिया दूध के सेवन से मानव में प्रवेश कर सकते हैं और सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं। इस प्रकार, थनैला के प्रेरक एजेंट की उचित पहचान की कमी के कारण एंटीबायोटिक दवाओं का अंधाधुंध उपयोग हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप विकास में वृद्धि हुई है और एएमआर उपभेदों का तेजी से उदय हुआ है।

थनैला का निदान

थनैला का निदान थन, कैलिफोर्निया थनैला टैस्ट (सी.एम.टी.) और सभी क्वार्टर दूध के नमूनों की सोमैटिक सैल काउंट (एस.सी.सी.) की नैदानिक/जांच के आधार पर किया जाता है।

*** कैलिफोर्निया थनैला टेस्ट (CMT) :** प्रत्येक तिमाही से दूध के नमूने सीएमटी पैडल के 4 कपों में से प्रत्येक में रखे जाते हैं और रंग और स्थिरता में किसी भी असामान्यताओं के लिए नग्न आंखों से शारीरिक रूप से जांच की जाती है। सीएमटी अभिकर्मक को नमूने में जोड़ा जाता है और धीरे-धीरे 15 एस के लिए स्ट्रोक किया जाता है। जेल गठन की सीमा के आधार पर, सीएमटी परिणाम को नकारात्मक (0), ट्रेस (1), कमजोर सकारात्मक (2), विशिष्ट सकारात्मक (3), और ढ़ता से सकारात्मक (4) के रूप में वर्गित किया गया है।

*** दुग्ध दैहिक कोशिका गणना (SCC) :** उपकरण में दैहिक कोशिकाओं की गिनती के माध्यम से सूजन को मापने के लिए सोमैटिक सेल काउंट (SCC) को स्वर्ण मानक माना जाता है। SCC के साथ सकारात्मक CMT प्रतिक्रिया प्रदर्शित करने वाले दूध के नमूने (> 2,00,000 कोशिकाएं प्रति एम.एल.) और दूध या थन की कोई असामान्यता नहीं दिखाई देने को उपनैदानिक/थनैला नमूने के रूप में वर्गित किया गया है, जबकि दूध के नमूने SCC (≥50,00,000 कोशिकाएं प्रति एम.एल.) के साथ दिखाई देने वाले नमूने के रूप में वर्गित किए गए हैं। दूध या थन की असामान्यता को नैदानिक/थनैला के रूप में वर्गित किया गया है। एक ही स्तनपान में क्लिनिकल थनैला के पिछले इतिहास वाली गायों और 1,00,000 कोशिकाओं/एम.एल. से कम SCC वाले दूध के नमूने को नकारात्मक या स्वस्थ नमूना माना जाता है।

थनैला का प्रबंधन

* थनैला को उपयुक्त प्रबंधन नीतियों को अपनाकर नियंत्रित किया जा सकता है।

* संक्रमित पशुओं और चिरकालिक मास्टिटिक पशुओं को झुंड से अलग कर लिया जाना चाहिए।

* गायों को स्वच्छ, स्वच्छ और शुष्क वातावरण में रखा जाना चाहिए। यह क्षेत्र के उचित वेंटिलेशन सुनिश्चित करने के लिए है।

* गाय के थन को पानी से साफ करके साफ करने से पहले और बाद में सुखा लेना चाहिए।

* दूध देने वाली मशीन को कीटाणुनाशक घोल से साफ करना चाहिए।

* थनैला घाटनाओं और उपचार प्रक्रिया पर एक अच्छा रिकॉर्ड बनाए रखा जाना है।

* थनैला को रोकने के लिए नियमित उपचार के रूप में सूखी गाय चिकित्सा का पालन किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया के तहत, दूध के सूखने की अवधि के दौरान जानवरों को इंट्रा मैमरी इन्फ्यूजन के रूप में एंटीबायोटिक दिया जाता है।

* कैलिफोर्निया थनैला टेस्ट की नियमित निगरानी, दूध सोमैटिक सेल काउंट्स को गोजातीयों के बीच थनैला को रोकने के लिए एक कड़े नियंत्रण उपाय के रूप में किया जाना है।

निष्कर्ष : थनैला गोजातीय के बीच एक विनाशकारी बीमारी है जो एक आम और वैश्विक समस्या है। बड़े पैमाने पर दूध के नुकसान और निरंतर पशु चिकित्सा व्यय से भारी आर्थिक नुकसान होता है और यह डेयरी उद्योग की लाभप्रदता से भी समझौता करता है। थनैला की घटना की निरंतर निगरानी और जोखिम प्रबंधन का मार्गदर्शन करने के लिए जोखिम कारक विश्लेषण आवश्यक है। इस प्रकार, निगरानी कार्यक्रमों और अच्छी प्रबंधन प्रणाली की स्थापना थनैला की घटनाओं को कम कर सकती है। थनैला प्रबंधन पर किसानों के बीच जागरूकता कार्यक्रम भी इसकी रोकथाम और नियंत्रण पर ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक हैं।

धान में बौनापन वायरसजनित बीमारी, कृषि विशेषज्ञों ने दी सलाह

नुकसान से बचने को धान की नर्सरी और खेतों में सफेद पीठ वाले टिड्डों की लगातार करें निगरानी

आगामी खरीफ सीज़न के मद्देनज़र किसानों को जागरूक करने के प्रयास तेज़ हो गए हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिये किसानों को फसलों विशेषकर धान की खेती संबंधी विभिन्न तकनीकों, बीजोपचार, बीमारियों, कीटनाशकों के उपयोग और जल संरक्षण के प्रति जागरूक किया जा रहा है, ताकि अनावश्यक खर्चों से बचा जा सके। कृषि विशेषज्ञ उन्हें जरूरी सलाह दे रहे हैं।

फिरोज़पुर के भंबे लंडे गांव में पी.ए.यू.-कृषि विज्ञान केन्द्र (के.वी.के.) के डिप्टी डायरेक्टर डॉ. गुरमेल सिंह संधू के नेतृत्व में प्रशिक्षण कैंप लगाया गया। इसमें बताया गया कि कुछ वर्षों से धान की फसल में तेज़ी से फैल रहे मधरे (बौनेपन) रोग की समय रहते रोकथाम न की जाए, तो फसल को भारी नुकसान उठाना पड़ सकता है। यह एक विषाणु जनित रोग है, जो धान की लगभग सभी किस्मों पर हमला कर सकता है। यह रोग सफेद पीठ वाले टिड्डे के जरिये फैलता है। इसके प्रभाव से पौधे छोटे रह जाते हैं, पत्तियां नुकीली

हो जाती है और जड़ें कमज़ोर विकसित होती हैं। पौधों की ऊंचाई सामान्य फसल की तुलना में आधी या एक-तिहाई रह जाती है। जिन खेतों में पिछले वर्षों में यह बीमारी दिखाई दी थी, उनमें किसानों को विशेष निगरानी रखने की जरूरत है। धान की नर्सरी और खेतों में सफेद पीठ वाले टिड्डों का लगातार सर्वे करें। खेतों की मेढ़ों और पानी वाले खालों को खरपतवार से मुक्त रखें। टिड्डों की मौजूदगी दिखाई देने पर पी.ए.यू., लुधियाना के सिफारिशी कीटनाशकों का छिड़काव किया जा सकता है। सहायक प्रोफैसर डॉ. सिमरनजीत कौर ने बताया कि धान के बीज को प्रति किलो 3 ग्राम स्प्रिंट दवा से उपचारित करना चाहिए। बासमती में झंडे रोग की रोकथाम के लिए ट्राइकोडर्मा एस्पेरेलम से बीजोपचार और पौधों की जड़ों को घोल में डुबोने की सलाह दी।

अब 30 जून तक करें सीधी बुवाई के लिए रजिस्ट्रेशन

खेती एवं किसान कल्याण विभाग, महल कलां के कर्मचारी हरपाल सिंह ने बताया कि धान की सीधी बुवाई के लिए रजिस्ट्रेशन की तारीख 30 जून तक बढ़ा दी गई है। सूबे में किसान जारी किए गए पोर्टल पर रजिस्ट्रेशन कर सकते हैं।

सुबह या शाम में बुवाई से 20 प्रतिशत तक पानी बचाएं

बरनाला के खियाली गांव में कृषि विभाग, महल कलां के कैंप में धान की सीधी बुवाई आदि के बारे में जागरूक किया गया। कृषि अधिकारी डॉ. जरनैल सिंह ने किसानों को धान के अवशेष न जलाने और मशीनरी का सही इस्तेमाल करने के लिए प्रेरित किया। किसान मौनसून को ध्यान में रखते हुए 17 जून से पहले कद्दू वाला धान न बोएं और भूजल बचाएं। कृषि विकास अधिकारी डॉ. जैस्मीन सिंह सिद्धू ने बताया कि सुबह या शाम में बुवाई से 15 से 20 प्रतिशत पानी बचाया जा सकता है। खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवार की सही पहचान के बाद ही बताए गए हर्बिसाइड का इस्तेमाल करें। 100 ग्राम साथी दवा 200 लीटर पानी में मिला स्प्रे करें।

किसान जांच करवाने को लेकर हो रहे जागरूक

पानीपत ज़िले की मिट्टी में ऑर्गेनिक कार्बन की मात्रा जरूरत से कम

कृषि विभाग और एच.ए.यू., हिसार के के.वी.के., ऊझा द्वारा खरीफ की फसलों को लेकर पानीपत जिले में संतुलित उर्वरक प्रयोग जागरूकता अभियान चलाया गया, जिसमें सेमिनार व किसान गोष्ठी द्वारा किसानों को मिट्टी की जांच के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करने के

पानीपत मंडी परिसर स्थित कृषि विभाग की लैब में मिट्टी की जांच करते कर्मचारी।

लिये प्रोत्साहित किया गया।

पानीपत में कृषि विभाग की दो बड़ी व दो छोटी लैबों में मिट्टी की जांच फ्री की जा रही है। पानीपत अनाज मंडी कृषि विभाग की बड़ी लैब है, जहां पर आईसीएपी मशीन से मिट्टी की जांच की जाती है और यह मशीन रोजाना 300 सैंपलों की जांच करती है।

मतलौडा लैब में रोजाना 100 सैंपलों की जांच होती है और इसराना व समालखा लैबों की क्षमता रोजाना 10-10 सैंपलों की है। पानीपत मंडी लैब में मिट्टी के 10 तत्वों की एक साथ जांच होती है, जिसमें फॉस्फोरस, सल्फर, पोटास, जिंक, पीएच, ईसी, ऑर्गेनिक कार्बन, मैगनीज व कॉपर शामिल हैं।

भूमि परीक्षण अधिकारी डा. सत्यवान के अनुसार जिला में पिछले करीब चार सालों में 2.09 लाख मिट्टी के सैंपल प्राप्त हुए और अब तक करीब 1.99 लाख सैंपलों की जांच हो चुकी है। किसानों में मिट्टी की जांच करवाने को लेकर जागरूकता बढ़ी है और पिछले कुछ सालों में मिट्टी की जांच करवाने वाले किसानों की संख्या बढ़ रही है। उन्होंने बताया कि पानीपत की मिट्टी में ऑर्गेनिक कार्बन की मात्रा .2 से लेकर .5 प्रतिशत तक की है, जोकि कम है। ऑर्गेनिक कार्बन की .4 प्रतिशत मात्रा को कम, .4 से लेकर .75 प्रतिशत को मध्यम और .75 प्रतिशत से ऊपर को उपयुक्त मानते हैं। जैविक कार्बन पर ही फसल का उत्पादन निर्भर करता है।

पैदावार बढ़ाने के लिए मात्रा बढ़ाने की जरूरत : डॉ. सतपाल सिंह

कृषि विज्ञान केन्द्र ऊझा के संयोजक डॉ. सतपाल सिंह ने बताया कि पानीपत ज़िला की मिट्टी में ऑर्गेनिक कार्बन की मात्रा 0.2 से 5 प्रतिशत तक है, जोकि काफी कम है। फसलों की पैदावार बढ़ाने के लिए मिट्टी में ऑर्गेनिक कार्बन की मात्रा को बढ़ाना जरूरी हे। खेतों में देसी खाद डालना, ढेंचा व मूंग की बुवाई करके हेरों से जुताई करके मिट्टी में मिलाने से ऑर्गेनिक कार्बन की मात्रा बढ़ती है। जैविक कार्बन की मात्रा को बढ़ाने के लिए ढैंचा के रूप में हरी खाद सबसे बेहतर विकल्प है।

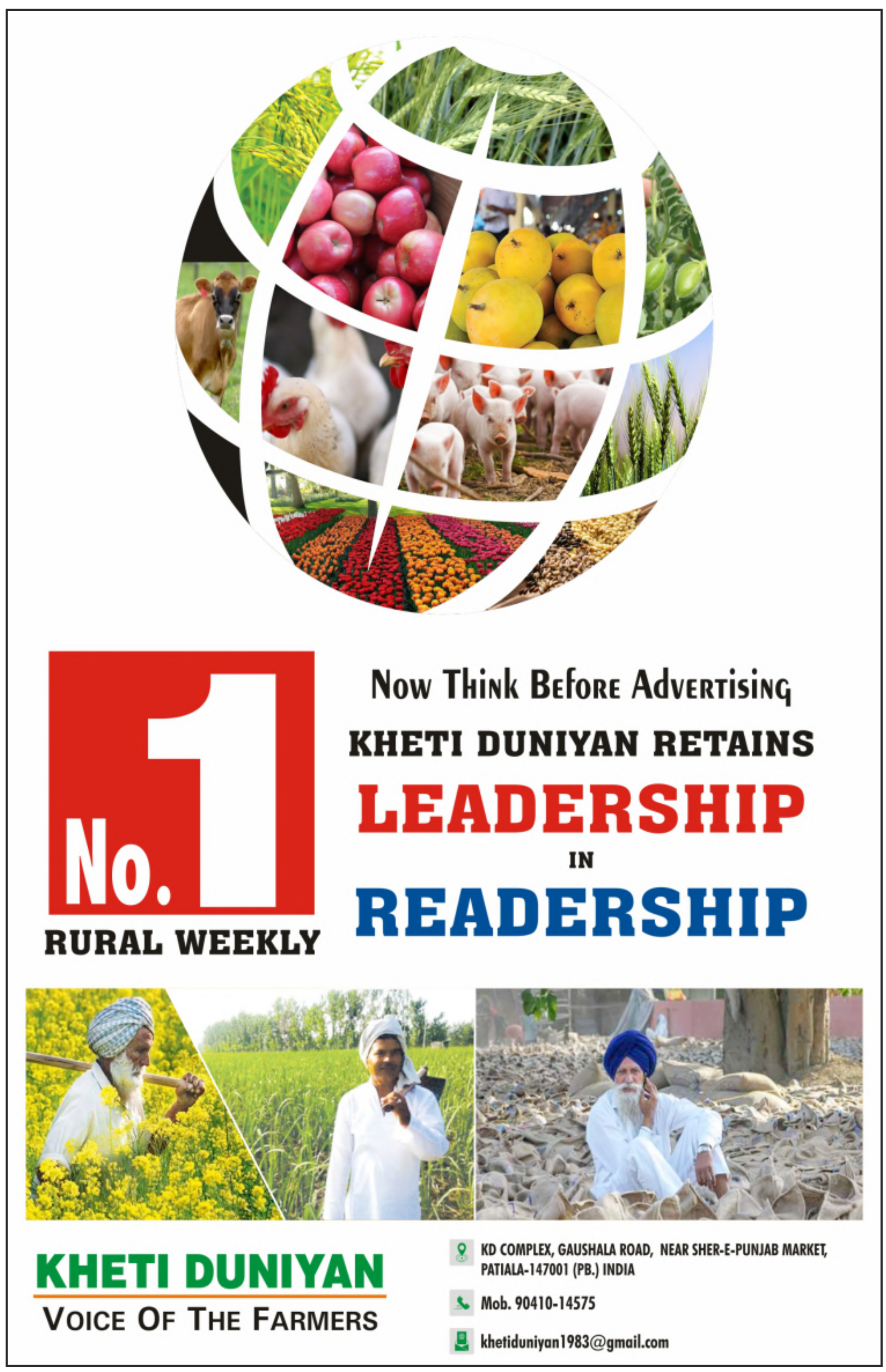

प्लम - हिमाचल प्रदेश के निचले व मध्यम ऊंचाई वाले क्षेत्रों की महत्वपूर्ण फसल

भारत में उगाई जाने वाली अलूचा (प्लम) की जातियों को यूरोपियन तथा जापानी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। यूरोपियन अलूचा के पौधे अधिक बढ़ने वाले होते हैं। इनकी पत्तियां बड़ी मोटी गहरी-हरी व चमकदार होती हैं। पत्तियों की निचली सतह तथा नये प्ररोह रोयेंदार होते हैं। ये अधिक ठंड सहन कर सकते हैं तथा इनकी कृषि समुंद्र तल से 1200 से 2000 मीटर ऊंचाई तक की जा सकती है। जापानी अलूचे की पत्तियां अपेक्षाकृत छोटी व रोयें रहित और पौधे छोटे से मध्यम आकार के होते है। यह यूरोपियन अलूचे से 20-25 दिन पहले फलता है और समुंद्र तल से 600 से 1500 मीटर ऊंचाई तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। फल हृदयाकार होते हैं। अलूचे की कुछ जातियां उत्तरी-पश्चिमी मैदानी भागों में उगाई जा सकती हैं।

उपयोग : अलूचा अधिकतर ताज़े फल के रूप में खाया जाता है। इसकी कुछ जातियों के फलों को डिब्बाबंदी के लिए भी उपयोग किया जाता है। इससे जैम, जैली व कैंडी आदि पदार्थ भी बनाए जाते है। कुछ जातियों जैसे इटेलियन प्रून व शुगर प्रून के फल सुखाकर भी प्रयोग में लाए जाते हैं।

मिट्टी : अलूचा के लिए गहरी उपजाऊ अच्छे जल निकास वाली चिकनी दोमट मिट्टी उत्तम रहती है। मिट्टी की जल धारण क्षमता भी अच्छी होनी चाहिए। अधिक चिकनी व अधिक बलुई मिट्टी में अलूचा नहीं लगाना चाहिए। अलूचा अन्य गुठलीदार फलों की अपेक्षा मिट्टी की जलाक्रांत दशाओं के लिए अधिक सहनशील है।

जलवायु : अलूचा शीतोष्ण जलवायु का फल है, परन्तु कुछ जातियां मैदानी क्षेत्रों की समशीतोष्ण जलवायु में भी उगाई जाती हैं। जिन क्षेत्रों में जहां शीत ऋतु अधिक ठंडी व ग्रीष्म ऋतु गर्म रहती है तथा वर्षा अधिक होती है। वहां अलूचा अधिक फलता-फूलता है। समुंद्र तल से 1000 से 1600 मीटर ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्र अलूचे की अधिकांश जातियों के लिए उपयुक्त हैं। जापानी अलूचे की द्रुतशीतन (चिलिंग) आवश्यकता यूरोपियन अलूचे से कम होती है। मैदानी क्षेत्रों में उगाई जाने वाली अलूचे की जातियों की द्रुतशीतन आवश्यकता 70-100 घंटे होती है। फूलने व फलने के समय पाल या ओला अत्यंत हानिकारक होता है।

किस्में : भारत में उगाई जाने वाली अलूचा की अधिकांश जातियां जापानी वर्ग की हैं, परन्तु यूरोपीय वर्ग की कुछ जातियां बहुत अच्छे गुणों वाली हैं, जिन्हें पर्वतीय क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। महत्वपूर्ण जातियों का वर्गीकरण निम्नलिखित है :

ऊंचे पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्में :

शीघ्र पकने वाली किस्में : स्वीट अर्ली, मैथले, कैलसी।

मध्यम समय में पकने वाली किस्में : स्टारकिंग डिलिशियस, सतसूमा, करवैक, एलीफेन्ट हार्ट।

देरी से पकने वाली किस्म : मेरीपोजा।

मध्यम पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त किस्में :

जल्दी पकने वाली किस्म : सैन्टारोजाए अर्ली, ट्रांसपेरन्ट गेजए, ब्यूटी।

मध्यम समय में पकने वाली किस्म : फ्रंटियर

देरी से पकने वाली किस्में : तीतरों, अलूचा, परपल।

तीतरो : यह मैदानी क्षेत्रों के लिए सबसे अच्छी जाती है। इसके फूल मध्यम आकार के व बैंगनी रंग के होते हैं। छिलका पतला तथा गुदा मुलायम और कम रसदार होता है।

मेरीपोजा : इसका फल बड़ा व हल्का पीला होता है। गुदा बैंगनी रंग का तथा कठोर होता है और जुलाई-अगस्त में पकते हैं।

केलसी : फल बड़ शंकवाकार व हरापन लिए पीले रंग के होते हैं। गुदा लाली युक्त पीला रसदार व मीठा होता है। इसके फल जुलाई में पकते हैं।

सैंटा रोज : अत्यंत लोकप्रिय प्रजाति है। फल बड़ा लाली युक्त गहरा बैंगनी तथा शंकवाकार होता है। गुदा सुनहरा-पीला अत्याधिक रसदार व मीठा होता है। फल जून-जुलाई में पकते हैं। यह भी एक स्वयं निसेशित प्रजाति है।

बरबैंक : इसके फल रंग, आकार तथा आकृति में ब्यूटी जैसे होते हैं, परन्तु गुदा अपेक्षाकृत सख्त होता है और फल जुलाई में पकते है।

फ्रंटीयर : फल सैंटारोजा से बड़ा, छिलका लाल बैंगनी, गुदा लाल सख्त मीठा व अच्छे गुणों वाला, गुठली आसानी से अलग होने वाली होती है। सैंटारोजा से 10-15 दिन बाद पकती हैं। इस किस्म के लिए पर-परागण के लिए सैंटारोजा किस्म के पौध लगाना आवश्यक है।

अर्ली ट्रांसपैरैंट गेज : यह एक यूरोपियन वर्ग की किस्म है। फल छोटा गोल व पीले रंग वाला और गुदा स्वादिष्ट होता है। यह अधिक फलने वाली व जुलाई में पकने वाली किस्म है।

शुष्क शीतोष्ण क्षेत्रों के लिए प्लम की सुखाने योग्य जातियां इटेलियन प्रून, शुगर प्रून तथा स्टनले प्रून आदि उगाई जा सकती है। स्टानले प्रून डिब्बाबंदी के लिए भी उपयुक्त है।

फूलना व फलना : प्लम के पौधे 3-4 वर्ष की आयु में फलना शुरू कर देते है एवं लगभग 30 वर्ष की आयु तक लाभकारी फल प्राप्त होते रहते है। फूल फरवरी-मार्च में आता है व फल मई से अगस्त तक प्राप्त होते हैं।

परागण : प्लम की अधिकतर किस्मों में स्वयं धायता पाई जाती है। अतः इनमें परागण हेतु विभिन्न किस्मों का लगाना ज़रुरी है। सान्तारोजा ब्यूटी व

मैथले जातियों में स्वयं परागण फल लगते हैं, परन्तु यदि इनके साथ अन्य जातियों को लगाया जाए, तो फलत अच्छी होती है। इटैलियन प्रून तथा शूगर प्रून में भी स्वपरागण से फूल बन जाते हैं।

रोपण का समय : पौधों को 6×6 या 5×5 मीटर की दूरी 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढों में दिसम्बर-जनवरी महीने में लगाते हैं।

खाद एवं उर्वरक : पौध लगाते समय 10 किलोग्राम गोबर की खाद तथा 500 ग्राम सुपर फास्फेट प्रति गड्ढे की दर से मिट्टी में मिला दें। प्रथम वर्ष में 280 ग्राम कैन, 220 ग्राम सुपर फॉस्फेट व 165 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधा देनी चाहिए। सातवें वर्ष तक प्रति पौधा इतनी मात्रा प्रति वर्ष बढ़ा देनी चाहिए। उसके बाद यह मात्रा स्थिर कर देनी चाहिए। गोबर या कम्पोस्ट की मात्रा 5 किलोग्राम प्रति पौधा प्रति वर्ष सातवें वर्ष तक बढ़ाते रहें। खाद तथा उर्वरक कलिकाएं फूलने से 2-3 सप्ताह पूर्व देने चाहिए।

सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई : अलूचा में भी आड़ू की तरह फलों के विकास के समय पानी की कमी नहीं होनी चाहिए, अन्यथा फलों में वृद्धि कम होती है तथा फल गिर जाते हैं। उप-पर्वतीय व मैदानी क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु (अप्रैल से जून) में प्रति सप्ताह हल्की सिंचाई करनी चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां सिंचाई की सुविधा ना हो वहां भूमि की सतह को घास-फूस व पत्तियों से ढक कर नमी बनाए रखनी चाहिए।

मैदानी क्षेत्रों में वर्षा एवं शीत ऋतु के अंत में एक-दो बार निराई-गुड़ाई अवश्य कर देनी चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों में मृदा कटाव को रोकने के लिए वर्षा ऋतु के बाद पौधों के बीच के खाली क्षेत्र की घास काट कर भूमि पर फैला देते है तथा थालों की हल्की गुड़ाई कर देते हैं।

सिधाई एवं कृन्तन : जापानी वर्ग की अधिकांश जातियों में फैला कर वृद्धि करने की प्रवृत्ति है। अतः इनकी खुला केन्द्र प्रणाली ओपन सेन्टर सिस्टम के द्वारा सधाई की जाती है। अधिकांश यूरोपीय जातियों में तथा कुछ जापानी जातियों जैसे सान्तारोजा में ऊपर की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति होती है, इस प्रकार की जातियों को रूपांतरित अग्र प्ररोह प्रणाली (मोडीफाईड लीडर सिस्टम) द्वारा सधाई की जाती है। पौधों की सधाई करते समय कांट-छांट इस प्रकार से करनी चाहिए कि पौधे बाहर की ओर वृद्धि करें।

फलतः वाले अलूचे के पौधों में बहुत हल्की कटाई-छंटाई की आवश्यकता होती है। जापानी वर्ग की जातियां दलपुटों स्पर्श तथा एक वर्ष पुराने प्ररोहों पर फल उत्पन्न करती हैं। इनमें एक वर्ष पुरानी टहनियों के ऊपर का एक-तिहाई भाग काट देते है, जिससे कि अगले वर्ष नये प्ररोह तैयार हो सकें। यूरोपीय वर्ग की जातियों में अधिकांश फल दलपुटों पर लगते हैं। इसकी जातियों में बहुत कांट-छांट करते हैं। जब दलपुट पुराने हो जाए तो हल्का कृन्तन करना चाहिए, जिससे कि नये दलपुट बन सकें। कमज़ोर, रोग ग्रसित, घिनकी व अंदर की ओर वृद्धि करती हुई शाखाओं को निकाल देना चाहिए। अलूचा के कृन्तन का उपयुक्त समय दिसम्बर-जनवरी है।

तुड़ाई एवं उपज : मैदानी भागों में अलूचा के फल मई-जून में तथा पर्वतीय क्षेत्रों में जून-जुलाई में पक कर तैयार हो जाते हैं। फलों को पूर्ण रूप से पकने के पश्चात् ही तोड़ना चाहिए। यदि फल दूर के बाज़ारों में भेजने हो, तो पके हुए परन्तु कुछ कठोर अवस्था में फलों की तुड़ाई करनी चाहिए। फलों की तुड़ाई सावधानी पूर्वक करनी चाहिए ताकि फलों को कोई हानि ना हो। एक पौधे से औसत उपज 40 किलोग्राम तक हो जाती है।

हर साल 10–15 फुट गिर रहा जल स्तर

दादरी में गंभीर संकेत : पाताल में पानी, संकट में किसानी

खारा पानी छीन रहा खेतों की उर्वरता

चरखी दादरी क्षेत्र में भू–जलस्तर नीचे जाने के बाद फव्वारों से की जा रही सिंचाई।

हरियाणा का चरखी दादरी जिला देश के सबसे गंभीर भू-जल संकट वाले इलाकों में शामिल होता जा रहा है। कभी भरपूर जल संसाधनों और समृद्ध खेती के लिए पहचाने जाने वाले इस क्षेत्र में अब पानी पाताल में सिमटता जा रहा है। हालात ऐसे हैं कि भू-जल स्तर हर साल औसतन 10 से 15 फुट नीचे जा रहा है। यह पर्यावरण और खेती के लिहाज से एक 'रेड सिग्नल' है। विशेषज्ञ चेतावनी दे रहे हैं कि यदि यही स्थिति बनी रही, तो आने वाले वर्षों में यह इलाका जल संकट और कृषि संकट के दोहरे खतरे से जूझता हुआ मरुस्थलीकरण की दिशा में बढ़ सकता है।

बाढड़ा क्षेत्र के उमरवास गांव के किसान राधेश्याम बताते हैं कि दो दशक पहले 100 फुट की गहराई पर मीठा पानी उपलब्ध हो जाता था और करीब एक लाख रुपये में ट्यूबवेल तैयार हो जाता था। अब पानी 350 से 400 फुट नीचे पहुंच चुका है। नया ट्यूबवेल लगाने में 8 से 10 लाख रुपये तक खर्च हो रहे हैं, लेकिन कई बार कुछ महीनों बाद ही बोरिंग जवाब दे देती है। इससे किसान कर्ज और आर्थिक संकट के चक्रव्यूह में फंसते जा रहे हैं।

खेतों से गायब हुई पारंपरिक फसलें

पानी की कमी ने दादरी के पारंपरिक फसल चक्र को भी बदल दिया है। गांव कारी के किसान ओमप्रकाश बताते हैं कि कभी यहां चना, गेहूं, सरसों और अन्य फसलें बड़े पैमाने पर होती थीं। नहरी पानी की कमी और भू-जल गिरावट के कारण चने जैसी फसलें अब लगभग समाप्त हो चुकी हैं। किसान अब सीमित विकल्पों के साथ खेती करने को मजबूर हैं, जिससे उत्पादन लागत बढ़ी है और आमदनी घटी है।

खारे पानी से दोहरी मार

समस्या केवल पानी की उपलब्धता तक सीमित नहीं है। भूमिगत जल में बढ़ती लवणता, फ्लोराइड और टीडीएस की मात्रा खेतों व मानव स्वास्थ्य दोनों के लिए खतरा बन चुकी है। भारतीय किसान यूनियन के जिला अध्यक्ष हरपाल सिंह भांडवा के अनुसार खारे पानी के कारण मिट्टी की उर्वरा शक्ति प्रभावित हो रही है और ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों में जोड़ों के दर्द, दांतों की समस्याओं तथा अन्य बीमारियों के मामले बढ़ रहे हैं।

राष्ट्रीय संकट की झलक दिखाता दादरी

विशेषज्ञ मानते हैं कि चरखी दादरी की स्थिति केवल एक जिले की कहानी नहीं, बल्कि पूरे उत्तर भारत के बड़े जल संकट की भयावह तस्वीर है। नीति आयोग के मापदंडों के अनुसार उत्तर-पश्चिमी कृषि क्षेत्र के कई हिस्से लगातार डार्क जोन श्रेणी में पहुंच रहे हैं। भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन, घटती वर्षा, नहरी प्रबंधन की कमजोरियां और बदलता कृषि ढांचा इस संकट को देश की खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौती बना रहा है।

जल संरक्षण ही एकमात्र रास्ता

कृषि एवं भू-जल विशेषज्ञ चंद्रभान श्योराण का कहना है कि यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए, तो हालात और गंभीर हो सकते हैं। उनके अनुसार खेतों में वर्षा जल संरक्षण, तालाबों का पुनर्जीवन, रीचार्ज बोर निर्माण और ड्रिप व स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों को व्यापक स्तर पर अपनाना ही इस संकट से निकलने का सबसे प्रभावी रास्ता है।

मध्य प्रदेश : नेताओं–अफसरों से सिर्फ आश्वासन मिला

'दशरथ मांझी' जैसी जिद; 150 फीट पहाड़ काट सड़क बना रहे ग्रामीण

मध्य प्रदेश के बड़वानी ज़िले के खेड़ी पलास फलियां गांव के लोग 150 फीट ऊंचे पहाड़ को काट कर खुद सड़क बना रहे हैं। गांव मेन रोड से करीब 3 किलोमीटर अंदर है। इसमें 1 किलोमीटर कच्ची

खेड़ी पलास फलियां गांव में पहाड़ काट कर सड़क बनाते ग्रामीण।

पगडंडी और 2 किलोमीटर का रास्ता पहाड़ी से होकर जाता है। बारिश में सम्पर्क टूट जाता है और बच्चों का स्कूल जाना तक मुश्किल हो जाता है। बार-बार शिकायत और जनसुनवाई के बाद भी जब सिर्फ वादे मिले, तो गांववालों ने कुदाली-फावड़े उठा कर काम शुरू कर दिया।

चंदा जुटाया, 1 लाख का फंड बनाया

ग्रामीण सब्ज़ियां आदिवासी के मुताबिक, गांव में बैठक कर सक्षम परिवारों ने 10-10 हज़ार रुपए दिए और बाकी लोगों ने अपनी क्षमता के हिसाब से मदद की। इससे करीब 1 लाख रुपए जुटाए गए। 2 किलोमीटर सड़क में से आधा काम ग्रामीण खुद कर चुके हैं। बाकी काम के लिए चंदे के पैसे से जे.सी.बी. बुलाने की तैयारी है। ग्रामीणों का कहना है कि यहां तक जे.सी.बी. पहुंच नहीं सकती थी, इसलिए पहले रास्ता बनाना शुरू किया।

जिम्मेदारों ने क्या कहा?

बड़वानी कलेक्टर जयति सिंह से सम्पर्क की कोशिश की गई, लेकिन उन्होंने फोन रिसीव नहीं किया। एस.डी.एम. भूपेंद्र रावत ने कहा कि बस्ती वन क्षेत्र में है, इसलिए मामले का परीक्षण किया जा रहा है। जिन बसाहटों में सड़क सम्पर्क नहीं है, सर्वे कर परियोजनाओं में शामिल करने की प्रक्रिया चल रही है।

पांच साल से अवशेष जलाए बिना खेती कर रहे गांव बाहमणीवाला (जलालाबाद ब्लॉक) के अमनदीप

मुख्य कृषि अधिकारी डॉ. हरबंस सिंह सिद्धू और उनकी टीम ने ज़िला फाजिल्का में जलालाबाद ब्लॉक के बाहमणीवाला गांव के प्रगतिशील किसान अमनदीप सिंह के खेतों का दौरा किया। इस अवसर पर किसान से बातचीत करने के बाद डॉ. हरबंस सिद्धू ने बताया कि अमनदीप सिंह पिछले पांच वर्षों से धान की पराली और गेहूं के अवशेष (नाड़) को आग लगाए बिना ज़मीन में ही मिला रहे हैं। इसके अलावा वह हर साल मिट्टी परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर ही खादों का उपयोग करते हैं। वह अपनी गेहूं की फसल में डी.ए.पी. खाद का उपयोग बिल्कुल नहीं करते हैं। वह इसके बिना ही गेहूं की बुवाई करते हैं। मुख्य कृषि अधिकारी ने अन्य किसानों से अपील की कि वे भी अमनदीप से प्रेरित होकर अपनी फसल के अवशेषों को खेतों में ही जोतें। ऐसा करने से ज़मीन की उर्वरता बढ़ेगी और फसल के झाड़ में इजाफा होगा।

अमनदीप सिंह का कहना है कि पराली जलाने से जहां पर्यावरण प्रदूषित होता है, वहीं इसके धुएं से राहगीर भी दुर्घटना का शिकार होते हैं और सांस व त्वचा से संबंधित कई प्रकार की बीमारियां पैदा होती हैं। जब से वह पराली और नाड़ को अपने खेतों में जोतकर अगली फसल की बुवाई कर रहे हैं, तब से उनकी ज़मीन की उपजाऊ शक्ति काफी बढ़ गई है। फसल की पैदावार भी पहले से अधिक हो रही है। इससे उनकी आय भी बढ़ी है और खेती की लागत में भी कमी की है।

मिर्च की फसल में प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन

डॉ. अभिषेक शुक्ला, कीट विज्ञान विभाग, न.म. कृषि महाविद्यालय, नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी (गुजरात)

हमारे देश में मिर्च एक नकदी वाली फसल है। इसकी व्यवसायिक खेती करके अधिक लाभ कमाया जा सकता है। यह हमारे खाने में इस्तेमाल होती है। मिर्च में विटामिन ए और सी पाए जाते हैं और कुछ लवण भी होते हैं। मिर्च का इस्तेमाल आचार, मसालों और सब्ज़ी में भी किया जाता है। मिर्च की फसल को अनेक कीटों तथा नाशी जीवों का प्रकोप होता है, जो ना केवल उत्पादन में कमी करते हैं, बल्कि गुणवत्ता को भी खराब करते हैं। प्रस्तुत लेख में मिर्च के इन्हीं नाशीकीटों के विषय में जानकारी दी गई है, जो मिर्च उत्पादकों के लिए फायदेमंद साबित होगी।

मिर्च की फसल में एकीकृत कीट प्रबंधन

1. मिर्च के रस चूसक कीट :

थ्रिप्स : इस कीट का वैज्ञानिक नाम (सिरटोथ्रिप्स डोरसेलिस) है। यह छोटे-छोटे कीट, पत्तियों एवं अन्य कोमल मुलायम भागों से रस चूसते हैं। इसका आक्रमण प्रायः रोपाई के 2 से 3 सप्ताह बाद आरम्भ हो जाता है। फूल लगने के समय इस कीट का प्रकोप बहुत अधिक हो जाता है, जिससे पौधों की पत्तियां सिकुड़ जाती हैं तथा मुरझा कर ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं तथा दूर से देखने पर नाव के आकार की दिखाई देती है। थ्रिप्स द्वारा क्षति ग्रसित पौधों को देखने से मौज़ेक रोग (विषाणु रोग) का भी भ्रम होता है। पौधे की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपज बहुत कम हो जाती है तथा उपज की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है।

माहू (एफिड) : इस कीट का वैज्ञानिक नाम *एफिस गोसीपी* है। यह कीट पत्तियों एवं पौधों के अन्य कोमल भागों से रस चूस कर पत्तियों एवं कोमल भागों पर मधुरस स्त्राव करते हैं, जिससे काले रंग की शूटी मोल्ड (काली फफूंदी) विकसित हो जाती है, जो प्रकाश संश्लेषण में बाधा उत्पन्न करके पौधों की बढ़वार को प्रभावित करती है, जिसके परिणामस्वरूप फल काले पड़ जाते हैं। यह कीट

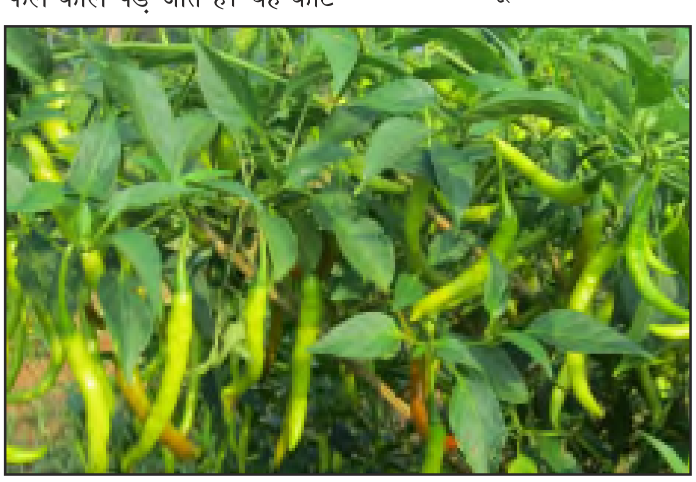

मौज़ेक (विषाणु) रोग के वाहक का काम भी करता है।

सफेद मक्खी : इस कीट का वैज्ञानिक नाम *बेमेसिया टेबेसाई* है। इस कीट के शिशु (निम्फ) एवं वयस्क पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। कीट पर्ण कुंचन रोग का वाहक होता है तथा एक पौधे से दूसरे पौधे में फैलाते हैं।

नियंत्रण : * कीट प्रकोप को प्रारम्भिक अवस्था में नीम तेल 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

* डायमिथोएट 30 ई.सी. या ट्राइज़ोफॉस 40 ई.सी. की 30 मिलीलीटर मात्रा तो 15 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

* कीट के अत्याधिक प्रकोप की अवस्था में 15 ग्राम एसीफेट या इमिडाक्लोप्रिड 5 एस.एल. की 5 मिलीलीटर मात्रा 15 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

पीली माईट : इस कीट का वैज्ञानिक नाम पोलीफेगोटार-सोनेमस लेटस है। यह छोटे-छोटे जीव होते है, जिनमें चार जोड़ी पैर होते हैं तथा ये पत्तियों की निचली सतह पर पाए जाते हैं और वहीं से लगातार रस चूसते रहते है, जिसके परिणामस्वरूप पत्तियां सिकुड़ कर नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। पीली माईट के कारण पौधे की बढ़वार कम हो जाती है तथा उत्पादन में भी कमी आ जाती है।

नियंत्रण : मिर्च की पीली माईट प्रतिरोधक किस्मों का चयन बुवाई के लिए करना चाहिए। मिर्च में परभक्षी माईट (ऐम्बलीसीयस प्रजाति) भी पाई जाती है, जो पीली माईट की प्राकृतिक शत्रु है तथा इसकी संख्या को कम करने में मदद करती है। रासायनिक माईटीसाईड्स जैसे प्रोपरगाईट 57 प्रतिशत ई.सी. अथवा क्लोरफेनापायर 5 मिलीलीटर/लीटर या एवामेक्टिन 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर या स्पाइरोमेसिफेन 0.75 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करके भी इस माईट का नियंत्रण किया जा सकता है।

2. बेधक कीट :

पत्ती तथा फल छेदक : इस कीट का वैज्ञानिक नाम *स्पेडोप्टेरा लिटुरा* है। शुरूआत में इल्लियां पत्तियों को खाती हैं तथा बाद में इल्लियां फलों में छिद्र करके नुकसान पहुंचाती हैं। यह फलों में गोल छिद्र बना कर उसके अंदर के भाग को खाती हैं। परिणामस्वरूप फल असमय ही झड़ जाते हैं। इस कीट के कारण मिर्च उत्पादक किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

नियंत्रण :

* इस कीट की प्रारम्भिक अवस्था में नीम तेल 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

* स्पाइनोसेड 4 मिलीलीटर या इंडोक्साकार्ब 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

हरी सुंडी : इस कीट का वैज्ञानिक नाम हेलिकोवार्पा आर्मीज़ीरा है। ये एक सर्वभक्षी कीट है, जो मिर्च के फलों में घुस कर उनको अंदर ही अंदर खा कर खराब कर भारी नुकसान करता है। छोटी अवस्था में सुंडियां पत्तियों तथा फूलों को भी खाकर मिर्च में नुकसान करती है।

नियंत्रण : * नर पतंगों को आकर्षित करके मारने हेतु फेरोमोन ट्रेप लगाने चाहिए। प्रति हैक्टेयर 40 ट्रेप लगाना फायदेमंद होता है।

* इस कीट की प्रारंभिक अवस्था में नीम तेल 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

* स्पाइनोसेड 4 मिलीलीटर या इंडोक्साकार्ब 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

शेष पृष्ठ 3 की

कपास की बीमारियों से...

टिण्डों पर भी धब्बे पाए जाते हैं। इस रोग के लक्षण पत्तों पर कोणदार जलसिक्त (पानीदार) धब्बों के रूप में नज़र आते हैं। ये गहरे भूरे होकर किनारों से लाल या जामुनी रंग के हो जाते हैं व कभी-कभी आपस में मिले हुए होते हैं व तनों पर लम्बे या अण्डाकार काले रंग के धब्बे बनते हैं। प्रकोप की अवस्था में कोणदार धब्बे शिराओं के पास सिमट जाते हैं और इस प्रकार शिराएं काली पड़ जाती हैं, जिससे की पत्ता सिकुड़ जाता है और पीला पड़ कर गिर जाता है।

माइरोथिसियम पत्ता छेदक धब्बा रोग

यह रोग माइरोथिसियम रोडीडम नामक फफूंद से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण रोगी

पत्तों पर लाल बैंगनी झलक लिए हल्के-भूरे रंग की फफूंद की बिन्दियों वाले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। आरम्भ में इन धब्बों का आकार पिन के सिर जैसा होता है। प्रकोप की अवस्था में धब्बे आपस में मिल जाते हैं। प्रायः रोग ग्रसित भाग पत्तों से गिर जाते हैं। इससे पत्तों में छेद हो जाता है। ऐसे ही लक्षण फल (टिण्डे) के नीचे की छोटी पत्ती और कभी-कभी टिण्डों पर नज़र आते हैं।

एन्थ्रैक्नोज़

यह बीमारी पौधे के हर भाग पर पौधे की किसी भी अवस्था में

आती है। शिशु पौधे पर लाल-लाल धब्बे बनते हैं और सारे तने पर छा जाते हैं, जिससे पौधे मर जाते हैं। जलसिक्त, अन्दर धंसे धब्बे बनते हैं, जिससे किनारे लाल रंग के होते हैं और बाद में नारंगी रंग का फफूंद जीवाणु इन पर छा जाता है। रोग ग्रस्ति टिण्डों पर धब्बे अन्दर तक फैल जाते हैं और डोडियों पर गुलाबी पिण्ड दिखाई देते हैं।

ग्रेमिल्ड्यू व दहिया रोग

यह रोग देसी कपास में लगता है, जब फसल लगभग पक जाती है और अधिकतर कपास पहले ही चुन ली जाती है। मिल्ड्यू के धब्बे पुराने पत्तों की निचली सतह पर छोटे, अनियमित व सफेद कोनेदार दिखाई पड़ते हैं। रोग ग्रसित पत्ते जल्दी ही गिर जाते हैं।

पैराबिल्ट

यह वर्तमान समय में कपास का मुख्य रोग है। यह समस्या

आमतौर पर अगस्त से अक्तूबर महीनों के बीच आती है। इसका मुख्य कारण लम्बे समय तक सूखा रहने के पश्चात् सिंचाई देना व वर्षा का होना है। रेतीली ज़मीन में इसका अधिक प्रकोप होता है। इस समस्या के कारण पौधों के पत्ते अचानक मुरझा जाते हैं और पौधे शीघ्र सूखने लगते हैं, लेकिन पौधे की जड़ें सामान्य रहती हैं और इसमें कोई रोगाणु शामिल नहीं होता। इस समस्या के लक्षण दिखाई देने के 48 घंटों के अंदर कोबाल्ट क्लोराइड 2 ग्राम प्रति 200 लीटर पानी में घोल बना कर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

कपास के रोगों की सामूहिक रोकथाम

बीज उपचार : पौधों को ज़मीन से उत्पन्न बहुत से फफूंदों से तथा बीज में रहने वाले जीवाणु से बचाव के लिए फफूंदनाशक दवाईयों से उपचारित करें।

छिड़काव कार्यक्रम : बुवाई के 6 सप्ताह बाद अथवा जून के अन्तिम या जुलाई के पहले सप्ताह में स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (6-8 ग्राम प्रति एकड़) व कॉपर ऑक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) को 150-200 लीटर पानी में मिला कर 15-20 दिन के अन्तर पर लगभग चार छिड़काव करें। यदि गन्धक 10 किलोग्राम प्रति एकड़ धूड़ें या बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें, तो देसी कपास के ग्रैमिल्ड्यू रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

हिंडन की दुर्दशा

नदी जल में प्रदूषण से बढ़ते स्वास्थ्य खतरे

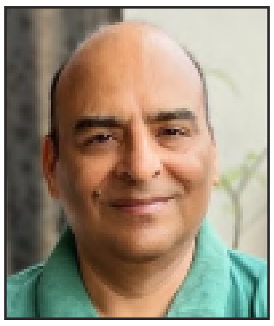

पंकज चतुर्वेदी

हिंडन नदी का प्रदूषण गंभीर होने के बावजूद ठोस सरकारी प्रयास नहीं हो रहे। एनजीटी ने बार-बार आदेश दिये लेकिन अनुपचारित सीवेज जारी है, जिससे पानी जहरीला हो गया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गांवों व दिल्ली में गंभीर बीमारियां बढ़ रही हैं।

राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (एनजीटी) हर बार गुस्सा दिखाता है लेकिन सरकारी मशीनरी कुछ वादे करती है, कुछ दावे लेकिन इससे तो हिंडन के हालात सुधरने से रहे। दिल्ली से सटे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बहने वाली हिंडन व उनकी सहेली कृष्ण और काली नदियों के हालात अब इतने खराब हो गए हैं कि उससे राजधानी दिल्ली के लोगों की सेहत भी खराब हो रही है। पश्चिमी उ.प्र. के ग्रामीण अंचलों में नदियों ने भूजल भी गहरे तक जहर बना दिया है। अक्तूबर, 2016 में ही एनजीटी ने नदी के किनारे के हजारों हैंडपंप बंद कर गांवों में पानी की वैकल्पिक व्यवस्था का आदेश दिया था। हैंडपंप तो कुछ बंद भी हुए लेकिन विकल्प न मिलने से मजबूर ग्रामीण वही जहर पी रहे हैं। एनजीटी ने यह भी मान लिया है कि पानी को प्रदूषण से बचाने के लिए धरातल पर कुछ काम हुआ ही नहीं।

हिंडन नदी भले ही उत्तर प्रदेश में बहती हो और उसके जहरीले जल ने तट पर बसे गांवों में तबाही मचा रखी हो, लेकिन अब दिल्ली भी इसके प्रकोप से अछूती नहीं। ज्ञात हो अगस्त, 2018 में एनजीटी के सामने बागपत जिले के गांगनोली गांव के बारे एक अध्ययन पेश किया गया, जिसमें बताया गया कि गांव में अभी तक 71 लोग कैंसर के कारण मर चुके हैं और 47 अन्य चपेट में हैं वहीं हजार से अधिक लोगों को पेट के गंभीर रोग हैं और इसका मुख्य कारण हिंडन का जहर है। इस पर एनजीटी ने विशेषज्ञ समिति गठित की, जिसकी रिपोर्ट फरवरी 2019 पेश की गई।

रिपोर्ट में बताया गया कि हिंडन व उसकी सहायक नदियों के प्रदूषण के लिए मुजफ्फरनगर, शामली, मेरठ, बागपत, गाजियाबाद और गौतमबुद्ध नगर जिलों में अनुपचारित सीवेज और औद्योगिक अपशिष्ट जिम्मेदार हैं। एनजीटी ने तब आदेश दिया कि सुनिश्चित किया जाए कि हिंडन का जल कम से कम नहाने काबिल तो हो। मार्च, 2019 में कहा गया कि इसके लिए एक ठोस कार्ययोजना छह महीने में प्रस्तुत हो। समय सीमा निकले तीन साल बीत गए, बात कागजों से आगे बढ़ी ही नहीं। गौरतलब है कि हिंडन का जहर अब दिल्ली के लिए भी काल बन रहा है। गंगा-यमुना के दोआब की भूमि से ही दिल्ली की विशाल आबादी की फल-सब्जी, अनाज की जरूरतें पूरी होती हैं। सिंचाई में इस्तेमाल हिंडन के जहरीले जल से खाद्य पदार्थों के जरिये दिल्ली वालों तक कई बीमारियां पहुंच रही हैं।

ऐसी कई रिपोर्ट सरकारी बस्तों में बंद है, जिसमें कहा गया है कि हिंडन के पानी को जहरीले रसायनों का मिश्रण कहना बेहतर होगा। पानी में आक्सीजन शून्य है व कोई जीव-जंतु बचा नहीं है। यदि पानी में हाथ डुबो दें तो त्वचा रोग हो सकता है और यदि आप इसे पीते हैं तो हेपेटाइटिस या कैंसर जैसी कई समस्याएं हो सकती हैं। हिंडन को सीवर से रिवर बनाने के लिए भले ही एनजीटी खूब आदेश दे लेकिन नीति-निर्माताओं को हिंडन की मूल समस्याओं को समझना होगा। इसके नैसर्गिक मार्ग को बदलना, इसमें शहरी व औद्योगिक नालों का मिलना, इसके जलग्रहण क्षेत्र में अतिक्रमण - इन तीनों पर एक साथ काम किए बगैर नदी का बचना मुश्किल है।

दिक्कत यह भी, कुछ कारखानों का बचाव कर रही सरकार मानने को तैयार नहीं कि हिंडन का पानी जहर से बदतर है। कुछ साल पहले देश की नदियों में प्रदूषण की जांच में जुटे केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने हिंडन नदी के पानी को नहाने लायक भी नहीं पाया है। बोर्ड ने यह जानकारी एनजीटी के तत्कालीन प्रमुख स्वतंत्र कुमार की अध्यक्षता वाली पीठ को सौंपे हलफनामे में दी थी। सीपीसीबी ने प्रदेश के सहारनपुर, मेरठ और गाजियाबाद में नदी के पानी की जांच की। हलफनामे में बताया कि नदी का पानी पर्यावरण अधिनियम, 1986 के तहत तय नहाने के पानी के मानकों के अनुरूप नहीं है। इसके समाधान के लिए बोर्ड ने ठोस अवशिष्ट को नदी किनारे और नदी में न फेंकने की हिदायत दी है। इसके अलावा बोर्ड ने कहा है कि अशोधित कचरा नदी में न फेंका जाए बल्कि नगरपालिका अवशिष्ट प्रबंधन अधिनियम के तहत इसकी सही व्यवस्था की जाए। इसके विपरीत उत्तर प्रदेश सरकार ने हिंडन के पानी को जहरीला बताए जाने के सीपीसीबी के दावे को झुठला दिया था।

हिंडन जहां भी शहरी क्षेत्रों से गुजर रही है, इसके जल-ग्रहण क्षेत्र में बहुमंजिला आवास बना दिए गए और इन कालोनियों के अपशिष्ट भी इसी में जाते हैं। नए पुल, मेट्रो आदि के निर्माण में हिंडन को सुखा कर वहां कंक्रीट उगाने में हर कानून को कुचला जाता रहा। आज भी गाजियाबाद जिले में हिंडन के तट पर कूड़ा फेंकने, मलबा या गंदा पानी डालने से किसी को भय-संकोच नहीं। अब नदी के जहर का दायरा विस्तारित होता जा रहा है।

देश में बढ़ेगा बागवानी उत्पादन, 2025-26 में 3777 लाख टन से अधिक उत्पादन का अनुमान

कृषि एवं किसान कल्याण विभाग ने वर्ष 2025-26 के लिए बागवानी फसलों के क्षेत्रफल और उत्पादन के द्वितीय अग्रिम अनुमान जारी कर दिए हैं। जारी आंकड़ों के अनुसार देश में बागवानी क्षेत्र लगातार विस्तार कर रहा है और उत्पादन में भी उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की जा रही है। सरकार द्वारा जारी आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2025-26 में देश का कुल बागवानी उत्पादन लगभग 3777.76 लाख टन रहने का अनुमान है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 70.39 लाख टन अधिक है।

बागवानी क्षेत्र भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। फल, सब्जियां, फूल, मसाले, औषधीय और सुगंधित पौधों का उत्पादन न केवल किसानों की आय बढ़ाने में मदद करता है, बल्कि कृषि निर्यात को भी मजबूती प्रदान करता है।

बागवानी फसलों का क्षेत्रफल बढ़ा

विभाग द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2025-26 में बागवानी फसलों का कुल क्षेत्रफल लगभग 301.51 लाख हैक्टेयर रहने का अनुमान है। यह वर्ष 2024-25 के 301.36 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल की तुलना में 0.14 लाख हैक्टेयर अधिक है।

हालांकि क्षेत्रफल में वृद्धि सीमित है, लेकिन उत्पादन में हुई बढ़ोतरी यह दर्शाती है कि किसानों ने बेहतर तकनीकों, उन्नत किस्मों और आधुनिक कृषि पद्धतियों का उपयोग किया है। इससे प्रति हैक्टेयर उत्पादकता में सुधार देखने को मिला है।

फलों के उत्पादन में उल्लेखनीय बढ़ोतरी

वर्ष 2025-26 में फलों का उत्पादन 1214.75 लाख टन तक पहुंचने का अनुमान है। यह वर्ष 2024-25 के 1176.49 लाख टन उत्पादन की तुलना में 38.26 लाख टन अधिक है।

विशेषज्ञों के अनुसार केला, आम, पपीता, सेब और अमरूद के उत्पादन में वृद्धि इस बढ़ोतरी का प्रमुख कारण है। देश में फलों की बढ़ती मांग और किसानों द्वारा व्यावसायिक बागवानी की ओर बढ़ते रुझान ने भी इस क्षेत्र को मजबूती दी है।

फल उत्पादन में वृद्धि से किसानों को बेहतर आय मिलने की संभावना है, वहीं उपभोक्ताओं को भी पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित हो सकेगी।

सब्जियों का रकबा और उत्पादन दोनों बढ़े

सब्जियां भारतीय बागवानी क्षेत्र का सबसे बड़ा हिस्सा हैं। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2025-26 में सब्जियों का क्षेत्रफल बढ़कर 118.79 लाख हैक्टेयर हो गया है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 0.88 लाख हैक्टेयर अधिक है।

सब्जियों का उत्पादन भी 2177.97 लाख टन से बढ़कर 2210 लाख टन होने का अनुमान है। यानी लगभग 32 लाख टन की वृद्धि दर्ज की जा सकती है।

व्यवसाय और उत्पादकता सॉफ्टवेयर

विशेष रूप से आलू, टमाटर, भिंडी, मटर, फूलगोभी और लौकी जैसी फसलों के उत्पादन में बढ़ोतरी की संभावना जताई गई है। यह वृद्धि देश की खाद्य सुरक्षा और पोषण सुरक्षा दोनों के लिए महत्वपूर्ण मानी जा रही है।

प्याज उत्पादन स्थिर, क्षेत्रफल में वृद्धि

प्याज देश की महत्वपूर्ण नकदी फसलों में शामिल है। वर्ष 2025-26 में प्याज का रकबा 19.68 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 20.14 लाख हैक्टेयर होने का अनुमान है। यह करीब 2.31 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाता है।

हालांकि क्षेत्रफल बढ़ने के बावजूद प्याज उत्पादन लगभग स्थिर रहने की संभावना है। वर्ष 2025-26 में प्याज उत्पादन 307.37 लाख टन रहने का अनुमान है, जबकि पिछले वर्ष यह 307.67 लाख टन था।

आलू और टमाटर उत्पादन में बढ़त

देश में आलू उत्पादन 2025-26 में 598.89 लाख टन रहने का अनुमान है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 13.18 लाख टन अधिक है। यह लगभग 2. 25 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाता है।

वहीं टमाटर उत्पादन भी बढ़ने की उम्मीद है। वर्ष 2024-25 में जहां टमाटर का उत्पादन 205.99 लाख टन था, वहीं 2025-26 में इसके 214.61 लाख टन तक पहुंचने का अनुमान लगाया गया है।

कमजोर मौनसून के बावजूद

कपास का रकबा 15 प्रतिशत बढ़ने की उम्मीद

कपास की खेती को लेकर इस बार किसानों के बीच उम्मीद बढ़ी है। कमजोर मौनसून की चिंता के बावजूद कई राज्यों में किसान कपास की बुवाई की तैयारी कर रहे हैं। बाजार में कपास के बेहतर दाम और नकदी फसल के रूप में इसकी मजबूत मांग को देखते हुए अनुमान लगाया जा रहा है कि इस साल कपास का रकबा 10 से 15 प्रतिशत तक बढ़ सकता है। हालांकि, किसानों को बुवाई से पहले मौसम, मिट्टी की नमी और सिंचाई की स्थिति जरूर देखनी चाहिए, क्योंकि कपास की अच्छी पैदावार के लिए सही समय पर बुवाई और शुरुआती नमी बहुत अहम होती है।

क्यों बढ़ सकता है कपास का रकबा?

इस साल कपास का रकबा बढ़ने के पीछे कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण यह है कि कई क्षेत्रों में किसानों को पिछले सीजन में कपास से बेहतर दाम मिले। इससे किसानों का भरोसा दोबारा कपास की ओर बढ़ा है। दूसरी ओर, कुछ खरीफ फसलों में लागत और भाव को लेकर अनिश्चितता बनी रहती है, ऐसे में किसान कपास को लंबी अवधि की नकदी फसल के रूप में चुन रहे हैं।

कपास की खेती में मेहनत और लागत दोनों लगती है, लेकिन सही मौसम, अच्छी किस्म, संतुलित खाद और समय पर कीट नियंत्रण अपनाया जाए तो यह फसल किसानों को अच्छा मुनाफा दे सकती है। यही वजह है कि कमजोर मौनसून की आशंका के बावजूद कई किसान इस साल कपास की बुवाई का रकबा बढ़ाने की तैयारी कर रहे है।

कमजोर मौनसून में कपास की खेती कैसी रहेगी?

कपास की फसल को बहुत ज्यादा पानी की जरूरत नहीं होती, लेकिन शुरुआती अवस्था में खेत में पर्याप्त नमी होना बहुत जरूरी है। अगर बुवाई के समय मिट्टी में नमी नहीं होगी, तो बीज का अंकुरण कमजोर हो सकता है। इससे पौधों की संख्या कम रह जाती है और बाद में उत्पादन पर असर पड़ता है।

कमजोर मौनसून में किसानों को जल्दबाजी में बुवाई नहीं करनी चाहिए। कपास की बुवाई तभी करें, जब खेत में अच्छी नमी हो या पहली अच्छी बारिश हो चुकी हो। जिन किसानों के पास सिंचाई की सुविधा है, वे समय से बुवाई कर सकते हैं, लेकिन वर्षा आधारित क्षेत्रों में बारिश की स्थिति देखकर ही फैसला लेना बेहतर रहेगा।

कपास की खेती में पानी का रुकना भी नुकसानदायक होता है। अगर खेत में जल निकासी सही नहीं है तो पौधों की जड़ों में सड़न, पीलापन और रोग बढ़ सकते हैं। इसलिए इस मौसम में कपास उगाने के लिए खेत का चुनाव और जल निकासी व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है।

कपास की खेती के लिए सही मौसम और तापमान

कपास की खेती में सफल उत्पादन के लिए मौसम का सही होना बहुत जरूरी है। कपास गर्म जलवायु की फसल है। इसके लिए 21 से 32 डिग्री सैल्सियस तापमान अच्छा माना जाता है। बीज अंकुरण के समय मिट्टी में गर्माहट और नमी दोनों होनी चाहिए। बहुत कम तापमान या लगातार बादल छाए रहने से पौधों की बढ़वार धीमी हो सकती है। कपास को अच्छी धूप की जरूरत होती है। अगर लंबे समय तक बादल और अधिक नमी रहती है, तो कीट और रोगों का खतरा बढ़ जाता है। इसलिए कपास की खेती खुले खेत में करनी चाहिए, जहां पौधों को पर्याप्त धूप मिल सके।

कपास के लिए कैसी मिट्टी होनी चाहिए?

कपास की खेती के लिए काली मिट्टी सबसे अच्छी मानी जाती है। काली मिट्टी में नमी रोकने की क्षमता अधिक होती है, जिससे सूखे या कम बारिश की स्थिति में फसल को सहारा मिलता है। इसके अलावा मध्यम से भारी दोमट मिट्टी में भी कपास की खेती अच्छी हो सकती है। किसानों को यह ध्यान रखना चाहिए कि मिट्टी में जल निकासी अच्छी होनी चाहिए। पानी रुकने वाली जमीन कपास के लिए सही नहीं मानी जाती। खेत में पानी जमा होने से पौधों की जड़ें कमजोर हो जाती है और फसल की बढ़वार प्रभावित होती है। कपास की अच्छी पैदावार के लिए खेत की मिट्टी भुरभुरी, उपजाऊ और नमी धारण करने वाली होनी चाहिए।

बुवाई का सही समय

भारत में कपास की बुवाई अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय पर होती है। उत्तर भारत के राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में कपास की बुवाई आमतौर पर अप्रैल से मई के बीच की जाती है। वहीं महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश और तेलंगाना जैसे राज्यों में कपास की बुवाई जून से जुलाई के बीच मौनसून की बारिश के बाद की जाती है। किसानों को बुवाई के समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। बहुत जल्दी बुवाई करने पर नमी की कमी से अंकुरण प्रभावित हो सकता है। वहीं बहुत देर से बुवाई करने पर सफेद मक्खी, गुलाबी सुंडी और अन्य कीटों का खतरा बढ़ सकता है। इसलिए स्थानीय मौसम और कृषि विभाग की सलाह के अनुसार ही कपास की बुवाई करनी चाहिए।

खेत की तैयारी कैसे करें?

कपास की अच्छी खेती के लिए खेत की तैयारी मजबूत होनी चाहिए। सबसे पहले खेत की गहरी जुताई करें, ताकि मिट्टी पलट जाए और पुराने खरपतवार, कीटों के अंडे और रोगजनक नष्ट हो सकें। इसके बाद 2 से 3 बार हल्की जुताई करके खेत को भुरभुरा बना लें। आखिरी जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल कर देना चाहिए। अगर खेत में पानी रुकने की संभावना हो तो नालियां बनाना जरूरी है। कमजोर मौनसून वाले क्षेत्रों में नमी संरक्षण के लिए खेत की मेड़बंदी और जैविक खाद का उपयोग फायदेमंद हो सकता है। इससे मिट्टी की नमी लंबे समय तक बनी रहती है।

इस सीजन में किसानों को क्या सावधानी रखनी चाहिए?

इस सीजन में किसानों को सबसे पहले मौसम और खेत की नमी पर ध्यान देना चाहिए। कमजोर मौनसून की स्थिति में जल्दबाजी में बुवाई करना नुकसानदायक हो सकता है। अगर खेत सूखा है तो बुवाई रोककर अच्छी बारिश का इंतजार करें। जिन किसानों के पास सिंचाई की सुविधा है, वे खेत की नमी बनाकर बुवाई कर सकते है। किसानों को प्रमाणित बीज, संतुलित खाद, सही दूरी पर बुवाई, जल निकासी और कीट प्रबंधन पर खास ध्यान देना चाहिए। बहुत घनी बुवाई से पौधों में हवा का आवागमन कम हो जाता है और रोगों का खतरा बढ़ सकता है। इसलिए पौधों की दूरी सही रखें और खेत की नियमित निगरानी करें।

किसानों के लिए कमाई का अवसर

कपास एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। इससे किसानों को रूई और बीज दोनों से आय मिलती है। कपास से जुड़ा टेक्सटाइल उद्योग देश की अर्थव्यवस्था में बड़ी भूमिका निभाता है। अगर किसान वैज्ञानिक तरीके से कपास की खेती अपनाते है तो बेहतर उत्पादन और बेहतर दाम दोनों का लाभ मिल सकता है। हालांकि किसानों को यह भी समझना होगा कि केवल रकबा बढ़ाना ही काफी नहीं है। उत्पादन लागत कम करना, कीटों पर नियंत्रण रखना और गुणवत्ता सुधारना भी उतना ही जरूरी है। अच्छी गुणवत्ता वाली कपास को बाजार में बेहतर दाम मिलने की संभावना रहती है।

कपूरथला में 72 एकड़ में खेती, बनेगी नई आय का साधन

संत सीचेवाल का आह्वान – भूजल बचाना है तो पंजाब पारम्परिक फसलों की ओर लौटे

दोआबा कभी मूंगफली के खेतों के लिए जाना जाता था। समय के साथ मौसम में बदलाव, बारिश में कमी और नलकूपों का अधिक उपयोग होने के कारण मूंगफली की बुवाई का रुझान कम हो गया। नलकूपों के कारण भूजल पर दबाव बढ़ गया। दोआबा में जो पानी कभी 30 फीट तक आसानी से मिलता था, अब 300 फीट तक मिलता है। भूजल तभी बच सकता है, जब पंजाब अपनी पारम्परिक फसलों की ओर लौटे।

इतिहास के झरोखे से झांकते हुए राज्यसभा सदस्य संत बलबीर सिंह सीचेवाल ने किसानों को सुझाव दिया कि भूजल की सुरक्षा और किसानों की आर्थिक स्थिति को मज़बूत करने के लिए फसल विविधता समय की सबसे बड़ी जरूरत है। वह मोठावाल गांव में पी.ए.यू., लुधियाना और कृषि विज्ञान केन्द्र, कपूरथला के आयोजन में आयोजित खेत दिवस और ट्रैवल सेमिनार को बतौर मुख्य अतिथि संबोधित कर रहे थे। कार्यक्रम में भूजल बचाने के लिए बसंत ऋतु की मूंगफली की खेती करने का सुझाव दिया गया। खैर, दोआबा क्षेत्र में बसंत ऋतु की मूंगफली की खेती ने किसानों के चेहरों पर रौनक ला दी। भूजल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली मूंगफली किसानों की जेब भरेगी।

इस मौके पर तीन साल से मूंगफली की खेती कर रहे किसानों ने अपने सफल अनुभव सांझा किए। साल में दो बार होने वाली मूंगफली की फसल को उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती और मक्का के मुकाबले पानी की खपत भी बहुत कम होती है। लिहाज़ा, कपूरथला में 72 एकड़ में मूंगफली की खेती की जाने लगी है।

पी.ए.यू., लुधियाना के वी. सी. डॉ. सतबीर सिंह गोसल ने कहा कि यह एक छोटी और सरल शुरूआत है। बसंत ऋतु की मूंगफली साल में दो बार वाली फसल है। साल में इसकी पैदावार 25 से 28 क्विंटल प्रति एकड़ मिलती है। वहीं, मोठावाल गांव के अग्रणी किसान जरनैल सिंह ने तीन साल पहले मक्का की जगह मूंगफली की बुवाई की। कपूरथला ज़िले में तीन साल पहले शुरू की गई 9 किलो से मूंगफली की खेती अब 72 एकड़ तक पहुंच गई।

1970–71 में होती थी 174 हज़ार हैक्टेयर में मूंगफली की खेती

पंजाब में हरित क्रांति की शुरूआत में बड़े पैमाने पर मूंगफली की खेती होती थी। 1960–61 में 67 हज़ार हैक्टेयर, 1965–66 में 136 हज़ार हैक्टेयर, 1970–71 में 174 हज़ार हैक्टेयर, 1980–81 में 83 हज़ार हैक्टेयर और 1985–86 में 45 हज़ार हैक्टेयर में यह खेती की जा रही थी। जैसे-जैसे हरित क्रांति का फैलाव होता गया, वैसे-वैसे मूंगफली के तहत क्षेत्र लगातार कम होता गया। 2019–20 में इसकी खेती 1.3 हज़ार हैक्टेयर तक सिमट गई। उसके बाद भी इसमें और गिरावट आई। अब मूंगफली की खेती बढ़ाने की योजना है। इस पर सूबे में मोगा, होशियारपुर समेत कई जगह काम चल रहा है।

धान की फसल में फिजी वायरस आने की आशंका, फरीदाबाद संस्थान से आई वरिष्ठ वैज्ञानिकों की टीम

किसानों को दी ज्यादा सजगता बरतने की सलाह

जगाधरी क्षेत्र में धान की नर्सरी का निरीक्षण करते राष्ट्रीय पादप रोग संस्थान फरीदाबाद से आए वरिष्ठ वैज्ञानिक।

किसानों ने धान की बुवाई तैयारी पूरी कर ली है। 15 जून से इसकी रोपाई शुरू हो जाएगी। जिला यमुनानगर में गेहूं, गन्ने के अलावा धान की फसल भी उगाई जाती है। कृषि वैज्ञानिकों ने इस बार फिजी वायरस (बौनापन) को लेकर चेताया है। इसे लेकर सोमवार को राष्ट्रीय पादप रोग संस्थान फरीदाबाद के विशेषज्ञों की टीम ने जगाधरी, बिलासपुर, साढ़ौरा इलाके का दौरा कर किसानों से बात की। विशेषज्ञों ने किसानों को फिजी वायरस (फसल में बौनापन) को लेकर सजग रहने की हिदायत दी।

संस्थान से आए डा. लक्ष्मीकांत व डॉ. के.पी. शर्मा ने बताया कि मौसम अनुकूल न होने पर इस बार धान की फसल में फिजी वायरस को लेकर कुछ ज्यादा ही सजगता बरतने की जरूरत है। उन्होंने बताया कि पौध उखाड़ते समय खेत में पानी भरकर रखें। इससे पौधे की जड़ सुरक्षित रहेगी। पौध की रोपाई जल्दी न करें। यह पंद्रह जून के बाद ही करें। उन्होंने ने कहा कि जिन खेतों में पिछली बार फिजी वायरस (बौनापन) आया था, उनमें इस बार धान की रोपाई न करें। फिजी वायरस से प्रभावित पौधों को उखाड़कर कर अच्छे से एक पालीथिन में डालकर जमीन में दबा दें। फिजी वायरस ज्यादा आने पर पौध के खेत में प्रति मरला ओसीन आधा ग्राम या चौस 0.75 ग्राम नामक दवाई का स्प्रे करें।

सहायक पौध संरक्षण अधिकारी डाक्टर सतीश ने किसानों से धान की फसल को लेकर इस बार कुछ ज्यादा सजगता बरतने की अपील की है। डाक्टर सतीश कुमार का कहना है कि कृषि विभाग इसे लेकर पहले ही सजग है। धान उत्पादक किसानों को जागरूक किया जा रहा है। किसानों को कृषि वैज्ञानिकों की सलाह पर अमल करने की सीख दी जा रही है।

धान की नर्सरी को प्रति एकड़ 12–15 टन गोबर खाद डालें

लघु अवधि वाली बासमती किस्मों की नर्सरी के लिए 15 जून तक करें बुवाई

मौनसून तक मौसम परिवर्तनशील बना रहेगा। किसानों ने धान की सीधी बुवाई शुरू कर रखी है। धान की रोपाई करने वाले किसानों के लिए पी.ए.यू., लुधियाना ने एडवाइजरी जारी की है। इसके अनुसार पी.आर.-126 की नर्सरी 20 जून तक बोनी चाहिए। अल्प अवधि वाली किस्मों जैसे पंजाब बासमती-7, पंजाब बासमती-5, पूसा बासमती-112, पूसा बासमती-1847 और पूसा बासमती-1718 की नर्सरी जून के पहले पखवाड़े (15 जून तक) में बोनी चाहिए।

बासमती चावल में बीज से होने वाली बीमारियां (जैसे फुट रॉट) रोकने को 1 किलो बीज को 3 ग्राम स्प्रिंट से उपचारित करें। इसके लिए 10-12 मिलीलीटर पानी में 'स्प्रिंट' का घोल बना लें। नर्सरी तैयार करने को प्रति 12-15 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गेबर खाद डालें और खेत में पानी दें, ताकि खरपतवार उग सके। लगभग एक सप्ताह बाद उगे हुए खरपतवार खत्म करने को खेत की दो बार जुताई करें। खेत में पानी भरें और अच्छी तरह पडलिंग करें। पडलिंग के समय प्रति एकड़ 26 किलो यूरिया, 60 किलो सिंगल सुपर फॉस्फेट और 40 किलो ज़िंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट (21 प्रतिशत ज़िंक) या 25 किलो ज़िंक सल्फेट मोनोहाइड्रेट (33 प्रतिशत ज़िंक) डालें। सुविधा अनुसार प्लॉट तैयार करें। नर्सरी में खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने को प्रति एकड़ 1200 मिलीलीटर ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी. के अनुशंसित ब्रांड का इस्तेमाल किया जा सकता है। बीज बोने के 3 दिन बाद प्रति एकड़ 500 मिलीलीटर सोफिट 37.5 ई.सी. (प्रेटिलाक्लोर + सेफनर रेडी मिक्स) को रेत में मिला कर भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

इसी तरह नर्सरी में बुवाई के 15-20 दिन बाद 150 लीटर पानी में 100 मिलीलीटर/एकड़ दर से नॉमिनी गोल्ड 10 एस.सी. छिड़क कर भी खरपतवार को नियंत्रित किया जा सकता है। हल्की बनावट वाली मिट्टी वाली नर्सरी में धान के पौधे अकसर आयरन की कमी के कारण पीले या सफेद पड़ जाते हैं। ऐसी नर्सरी में 100 लीटर पानी में घुले 0.5 से 1.0 किलोग्राम फेरस सल्फेट का छिड़काव करें।

महाराष्ट्र के लातूर ज़िले का मामला

बिजली गिरने से बैल की मौत, 61 साल की हौसाबाई ने कंधे पर हल रख खेत जोता...

महाराष्ट्र के लातूर ज़िले में बिजली गिरने से बैलों की जोड़ी में से एक बैल की मौत हो गई। खेती का मौसम हाथ से न निकल जाए... इसलिए 61 साल की किसान हौसाबाई गायकवाड़ ने बैल के

साथ खुद कंधे पर हल उठा कर जुताई शुरू कर दी। दरअसल, बटाई पर खेती करने के लिए काशीनाथ गायकवाड़ ने ब्याज़ पर पैसे लेकर बैलों की जोड़ी खरीदी थी। एक बैल की मौत के बाद दूसरा बैल खरीदने की आर्थिक क्षमता नहीं है और ट्रैक्टर से जुताई का खर्च भी नहीं उठा पा रहे थे। ऐसे में हौसाबाई ने बैल के साथ जुताई की जिम्मेदारी संभाल ली। काशीनाथ और हौसाबाई गायकवाड़ की 4 बेटियां और 2 बेटे हैं। एन.सी.पी. (एस.पी.) के विधायक रोहित पवार ने गत् दिनों इस दंपती का वीडियो सोशल मीडिया पर पोस्ट किया। उन्होंने महाराष्ट्र के किसानों का पूरा कर्ज़ माफ करने की मांग की।

कृषि एवं कृषि संबंधित विषयों पर आधुनिक जानकारी लेने हेतु पढ़ें

खेती संदेश

हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

कृषि एवं कृषि सहायक धंधों की आधुनिक जानकारी से भरपूर

एक वर्ष में 52 अंक

किसान भाईयों व डीलर/डिस्ट्रीब्यूटरों के लिए

चंदों में विशेष छूट

एक वर्ष 500/- रुपए | दो वर्ष 800/- रुपए

KHETI DUNIYAN TID - 62763351

पेमेंट करने के पश्चात् अपना डाक पता इस नंबर पर भेजें : 90410-14575

चंदे भेजने हेतु QR कोड स्कैन करें।

खेती संदेश (कृषि साप्ताहिक)

के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, पटियाला

केन्द्र बासमती धान की गुणवत्ता और आर्थिक व्यवहार्यता बनाए रखने को

बासमती को समर्थन मूल्य प्रणाली के अन्तर्गत लाए

... गतांक से आगे

उल्लेखनीय है कि बासमती धान की खेती भारतीय उपमहाद्वीप में हिमालय की तलहटी के विशिष्ट भौगोलिक संकेत क्षेत्र हरियाणा, पंजाब, पश्चिम उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश आदि राज्यों तक मान्य है। इन राज्यों में मोटे/सामान्य धान की खेती की विश्व स्तरीय उच्च उत्पादकता के कारण औसत पैदावार 28 क्विंटल प्रति एकड़ है, जो समर्थन मूल्य पर बिक्री से किसानों को लगभग 75,000 रूपये प्रति एकड़ की कुल आय और 40,000 रूपये प्रति एकड़ से अधिक का शुद्ध लाभ देती है। जबकि बासमती धान खेती की औसत पैदावार मात्र 17 क्विंटल प्रति एकड़ पर कुल आय 45,000 रूपये प्रति एकड़ और शुद्ध लाभ 10,000 रूपये प्रति एकड़ ही मिलता है। इसके अतिरिक्त बासमती धान के बाजार भाव में लगातार अनिश्चिता बनी रहने से, किसानों में बासमती धान की खेती से लगातार मौह भंग हो रहा है।

एपीडा (कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण) ने श्बासमतीश शब्द को वैश्विक स्तर पर भौगोलिक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह लाठर,
पूर्व प्रधान वैज्ञानिक अनुसंधान
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
मो. 9416801607

संकेत (जीआई) के रूप में पंजीकृत कराया और जो बासमती चावल की प्रामाणिकता की गुणवत्ता सुनिश्चित करता है। एपीडा की फसल सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2023-24 में भारत में बासमती धान का कुल क्षेत्रफल लगभग 25 लाख हैक्टेयर रहा और उत्पादन 12-15 मिलियन मीट्रिक टन हुआ, जिसमें पंजाब का क्षेत्रफल 8.12 लाख हैक्टेयर, हरियाणा का 7.87 लाख हैक्टेयर तथा उत्तर प्रदेश का 4.61 लाख हैक्टेयर रहा। भारतीय बासमती चावल के अनूठे गुणों का श्रेय इसके विशिष्ट क्षेत्र

की कृषि-जलवायु परिस्थितियों के साथ फसल कटाई और प्रसंस्करण तरीकों को दिया जाता है।

किसानो, बिचौलियों और राईस मिलर्स के लालच से बासमती चावल की गुणवत्ता पर गहरा संकट बना हुआ है, क्योंकि पिछले कुछ वर्षो से बासमती धान की खेती निर्धारित भौगोलिक संकेत (जी.आई.) क्षेत्र से बाहर के राज्यों में भी बड़े स्तर पर होने लगी है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड के तराई क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन बासमती धान पर प्रतिबंध नही होने और आलू उत्पादक किसानों द्वारा अगेती बासमती फसल लगाने से, पूसा बासमती - 1509 जैसी कम अवधि वाली किस्में अगस्त महीने में ही मंडियों में बिक्री के लिए आ जाती हैं, इस फसल को अवैध लाभ बढ़ाने के लिए राईस मिलर्स औने-पौने दाम पर खरीदकर बासमती चावल में मिलावट करके बासमती को गुणवत्ता को कम कर रहे हैं।

निस्संदेह बासमती चावल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए, सरकार को कृषि उपज मंडियों में पहली अक्तूबर से पहले बासमती धान की बिक्री पर कानूनी प्रतिबंध लगाना चाहिए, क्योंकि बासमती धान में सुगंध के लिए उत्तरदायी जीन (बीएडीएच2) रासायनिक यौगिक 2-एसिटाइल -1-पाइरोलाइन (2-एपी) के उत्पादन को नियंत्रित करता है। जब दिन-रात का औसत तापमान 25 डिग्री सैल्सियस से कम होता है, तो यह जीन सक्रिय होकर बासमती धान फसल में विकसित हो रहे चावल के दानों में सुगंध की मात्रा कई गुना बढ़ा देता है। यह तापमान उत्तर पश्चिम भारत में आमतौर पर 10 सितंबर के बाद ही सम्भव होता है। पूसा बासमती-1509 जैसी कम अवधि वाली किस्में अगस्त महीने में ही मंडियों में बिक्री के लिए आ जाती है, इसी कारण से देश में बिक रहे ज्यादातर बासमती चावल लगभग सुगंधहीन है।

इसके अतिरिक्त बिचौलियों और राईस मिलर्स मंडियों में भ्रष्ट कार्टेल बनाकर बासमती धान के खरीद दाम में भारी हेराफेरी करके वर्षों से किसानों को खुला शोषण करते रहे हैं। इसीलिए बासमती धान खेती की आर्थिक व्यवहार्यता बनाए रखने के लिए, सरकार को सामान्य धान के मुकाबले डेढ़ गुणा अधिक एम.एस.पी. दाम घोषित करके, बासमती धान को एम.एस.पी. विपणन प्रणाली में लाना चाहिए, जिससे किसानों की बिचौलियों और राईस मिलर्स द्वारा वर्षों से की जा रही खुली लूट पर रोक लगाने और बासमती धान के दाम में अनिश्चितता को खत्म किया जा सकेगा, जिससे किसानों को बिचौलियों के शोषण से बचाया जा सकेगा और और बासमती चावल की गुणवत्ता सुनिश्चित की जा सकेगी।